मल्लवधू
भिक्षु धर्मरक्षित

पुस्तक का नाम- मल्लवधू.

प्रकाशन-तिथि- जनवरी, सन् १९६५ ई०

पुरस्कार का नाम- प्रेमचन्द पुरस्कार (कहानी संग्रह).

लेखक का नाम तथा पता- भिक्षु धर्मरक्षित, सारनाथ,
वाराणसी. (उत्तर प्रदेश)

मल्ल-वधू

•

भिक्षु धर्मरक्षित

•

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बाँसफाटक, वाराणसी ।

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बाँसफाटक, वाराणसी ।

प्रथम संस्करण : १९६५ ई०

मूल्य : रुपए २·५०

मुद्रक

विश्वनाथ भार्गव

मनोहर प्रेस, जतनबर,

वाराणसी ।

समर्पण

अपने दिवंगत पितृव्य वैष्णव सन्त

बाबा मंगलदास

की

पुण्य स्मृति में
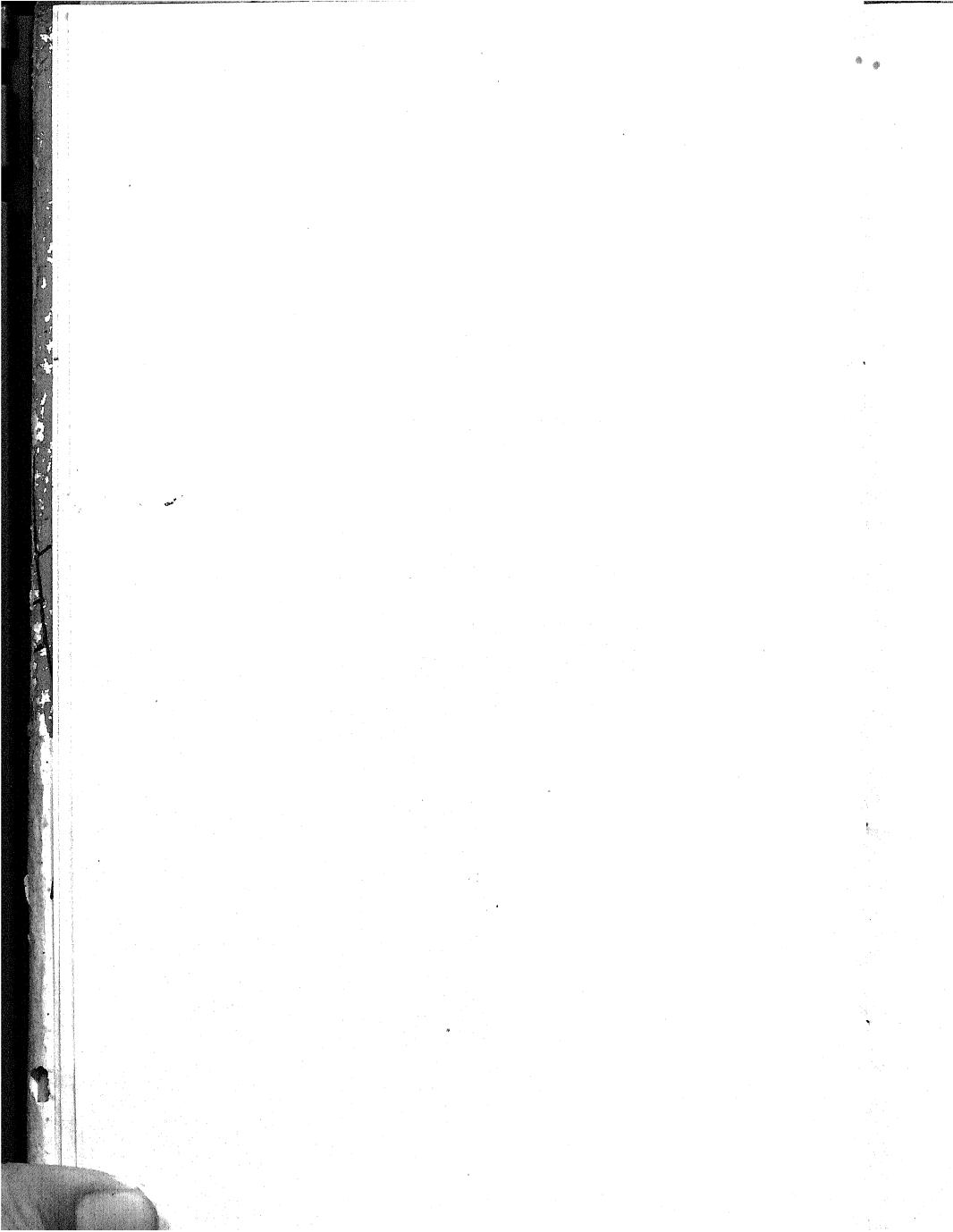
जिन्होंने बचपन में मुझे विद्याध्ययन के लिये प्रेरित किया तथा अन्त में अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी घोषित करते हुए मंगल-कामना की

वस्तुकथा

प्राचीन भारत के इतिहास में गणतंत्रों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। छठीं शताब्दी ईसवी पूर्व में उत्तर भारत के गणतंत्रों में मल्ल गणतंत्र एक शक्तिशाली एवं आदर्श प्रजातंत्र था, जिसका विस्तृत वर्णन पालि त्रिपिटक तथा अट्ठकथाग्रन्थों में विद्यमान है। इस गणतंत्र की स्थापना सम्भवतः ईसवी पूर्व दसवीं शताब्दी में हुई थी और पश्चिम से आर्यों ने आकर इसे प्रजातंत्र की ईकाई का रूप दिया था। उन्हें इसके लिये संघर्ष करने पड़े थे और अनेक प्रकार के कष्ट भी सहने पड़े थे। उन्होंने कुशीनारा को इसकी राजधानी बनाया था। पीछे पावा नगर भी एक शासन-केन्द्र बन गया और इस प्रकार मल्ल जनपद एक प्रजातंत्र होते हुए भी दो शासन-सूत्रों में विभक्त हो गया था। यह घटना अनुमानतः सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में घटी थी। उसके सौ वर्षों के पश्चात् मल्ल जनपद काफी समृद्ध हो गया था और उसी समय भगवान् बुद्ध का आविर्भाव हुआ था। उनके उपदेश से प्रभावित होकर बहुसंख्यक मल्ल जाति बौद्ध हो गई थी। उसी समय कुशीनगर का बन्धुल मल्ल कोसल-नरेश प्रसेनजित् का सेनापति था। ईसवी पूर्व ५४३ में कुशीनारा में भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण होने के उपरान्त बन्धुल मल्ल की विधवा पत्नी मल्लिका ने अपने महालता प्रसाधन नामक आभूषण को भगवान् की रथी पर अर्पित कर दिया था। उस समय राजधानी कुशीनारा की

शोभा, शालवन उपवत्तन, हिरण्यवती की कलकल धारा, मुकुट-बन्धन चैत्य, खाणुका नदिका की चंचलता तथा नगर की वीथि, आपण, संस्थागार आदि के अलंकार एवं रूपसज्जा अवलोकनीय थे। दास-दासी मुक्त होकर भिक्षु-भिक्षुणी-संघों के सदस्य बन रहे थे। उस समय मल्ल जनपद के अन्य नगर—अनूपिया, थूणग्राम, उरुवेलकप्प, पावा, भोगनगर, अम्बग्राम, जम्बूग्राम आदि भी अपने त्याग, धार्मिकता एवं समृद्धि के लिये प्रसिद्ध थे। भगवान् बुद्ध के जीवन के अन्तिम दिन मल्ल जनपद के ग्रामों में ही व्यतीत हुए थे। उन्होंने अन्तिम भोजन पावा में चुन्द कर्मारपुत्र के यहाँ ग्रहण किया था और अन्तिम साँस कुशीनारा के शालवन उपवत्तन के यमक-शालवृक्षों के नीचे ली थी। अन्तिम उपदेश वहीं किया था तथा वहीं की भूमि, वायु, जल तथा अग्नि में उनका पार्थिव शरीर विलीन हो गया था। यह इस जनपद के लिये गौरव की बात थी। वास्तव में प्रथम बुद्ध-शासन का संगठन-कार्य यहीं प्रारम्भ हुआ था, जब कि महाकाश्यप ने भिक्षुओं को प्रेरित किया था कि हम बुद्ध-वचन का संगायन करें और राजगृह की सप्तपर्णी गुहा में संगायन करने के लिये ५०० भिक्षुओं का निर्वाचन हुआ था।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तथा उनके पश्चात् भी भिक्षुओं एवं सार्थवाहों द्वारा बौद्धधर्म का प्रसार होता ही रहा। यद्यपि बुद्ध-महापरिनिर्वाण के थोड़े ही दिनों के उपरान्त मल्ल जनपद मगध राजतंत्र का अंग हो गया था, जिसपर शिशुनाग, मौर्य आदि राजाओं का शासन बना रहा, किन्तु वहाँ की जनता में धार्मिक चेतना बनी रही। इतिहास करवट बदलता गया,

परिस्थितियाँ विषम तथा अनुकूल होती रहीं और संसार की गतिशीलता में मल्ल जनपद का स्वरूप-परिवर्तन जारी रहा। दसवीं शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर आधुनिक काल तक इस जनपद में कैसे-कैसे परिवर्तन हुए और यहाँ की जनता को किन-किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा—इन सब बातों का दिग्दर्शन १५ कहानियों में कराया गया है।

ये कहानियाँ मल्ल जनपद से ही सम्बन्धित हैं, किन्तु इनसे तत्कालीन सम्पूर्ण उत्तर भारत के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी अपने काल का प्रतिनिधित्व करती है। उससे उस काल के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक वातावरण का आभास होता है। छठीं शताब्दी ईसवी पूर्व की ही केवल दो कहानियाँ एक काल की हैं—(१) मल्ल-वधू और (२) चुन्द, किन्तु दोनों के माध्यम से दो विभिन्न वातावरण को प्रस्तुत किया गया है और यही दोनों कहानियाँ ऐतिहासिक भी हैं। शेष सभी काल्पनिक हैं, किन्तु ऐतिहासिक तथ्य को प्रगट करने के लिये नाम, स्थान आदि प्रायः तत्कालीन प्राप्त लेखादि से लिये गये हैं।

मल्ल जनपद की सीमा क्या थी? यह उस समय तक निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता, जब तक कि किसी ग्रन्थ या लेख में सीमा-निर्देश प्राप्त न हो जाय। डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल का कथन है कि मल्ल जनपद गोरखपुर जिले से लेकर पटना के आसपास तक चला गया था[1]। पालि ग्रन्थों

---

१. हिन्दू राजतंत्र भाग १, पृष्ठ ७४।

से जान पड़ता है कि इसकी पूर्वी सीमा हस्तिग्राम (हथुवा) से थोड़ी दूर पश्चिम तक गई हुई थी। हस्तिग्राम वज्जी जनपद में पड़ता था[१] । पटना के पास गंगा के इस पार एक ओर वज्जी जनपद था तो दूसरी ओर मल्ल[२] । बड़ी गंडक (मही) कुछ दूर तक विभाजक रेखा बनाती थी । दक्षिण में सरयू (सरभू) और पश्चिम में राप्ती (अचिरवती) तथा मझन (अनोमा) सीमान्त सरिताएँ थीं । उत्तर में हिमालय की तराई के पर्वतों तक मल्ल जनपद फैला हुआ था । इसके मध्य होकर हिरण्यवती, ककुत्थी, सुवर्णा, खाणुका, छोटी गंडक आदि सरितायें बहती थीं। मल्ल जनपद के पूर्व वज्जी जनपद था, पश्चिम कोलिय और पिप्पलिवन के गणतंत्र थे। उत्तर में हिमवन्त प्रदेश तथा दक्षिण में अल्लकप्प और काशी जनपदों की सीमायें छूती थीं।

मल्ल जनपद की अपनी एक विशेषता है, जो अन्यत्र नहीं पायी जाती। पड़ोसी जनपदों की जनता इसी कारण पूर्वकाल से अपना वैवाहिक सम्बन्ध इससे बनाना उत्तम समझती है। सरयूपारियों की धाक कम नहीं है। इस ऐतिहासिक तथा सुखसमृद्धि से सम्पन्न जनपद में सम्प्रति निर्धनता का नग्न नृत्य हो रहा है। यहाँ के निर्धन निवासियों में से बहुसंख्यक अपने प्रदेश से बाहर जाकर जीविकोपार्जन कर रहे हैं। बर्मा, श्याम आदि तक में बिखरे हुए हैं। स्वतंत्र भारत में अब धीरे-धीरे इनमें मव-चेतना जागृत हो रही है।

"मल्ल-वधू" में मल्ल-जनपद के प्राचीन काल से लेकर

---

१. बुद्धचर्या पृष्ठ ४३९। २. सूत्रद्वयम् पृष्ठ ८१।
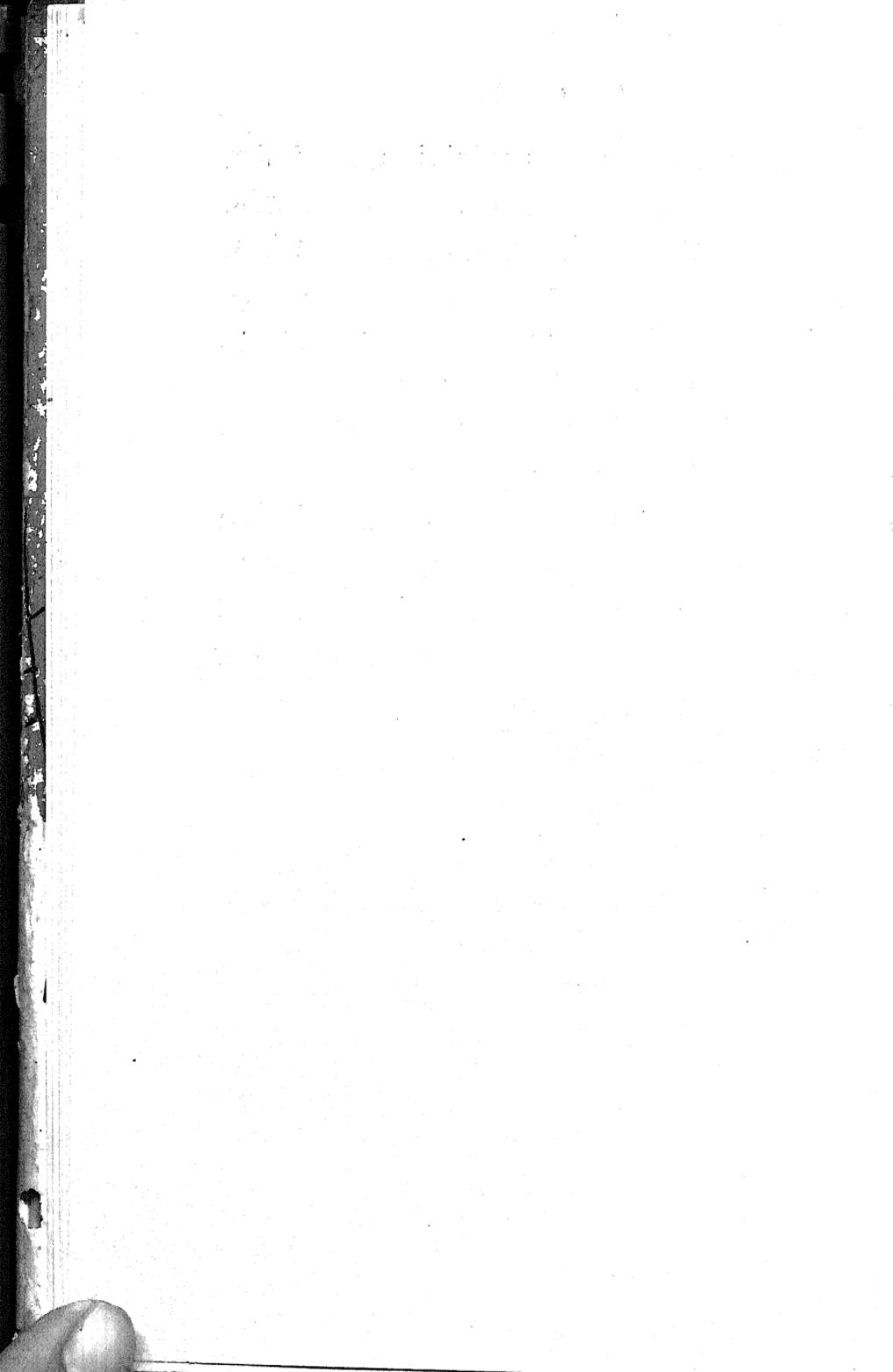
आधुनिक काल तक का परिचय कहानियों के माध्यम से दिया गया है। ये कहानियाँ मल्ल जनपद के इहिहास की तत्कालीन परिचायिका है। इन कहानियों के सरस वातावरण में इतिहास की महत्वपूर्ण बातें बतला दी गयी हैं, जिन्हें पाठक पढ़ते हुए कहानी के रसास्वादन के साथ मल्ल जनपद की गरिमा से भी परिचित होंगे। इन कहानियों के अन्त में निष्कर्ष-स्वरूप ऐतिहासिक तथ्यों का निर्देश कर दिया गया है। ये कहानियाँ अपनी एक विशेष शैली में लिखी गई हैं, जिनमें कहानी के तथ्य सत्य हैं और उन तथ्यों को कालानुरूप कल्पित पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ में काल भी निर्दिष्ट कर दिया गया है, जिससे पाठक को उसे समझने में सरलता हो। आशा है कि मल्ल जनपद की जनता तथा इतिहास के जिज्ञासुओं के लिये यह कहानी-संग्रह प्रिय एवं उपादेय सिद्ध होगा।

धर्मपाल डिग्री कालेज,
सारनाथ, वाराणसी।
१७-१०-१९६४
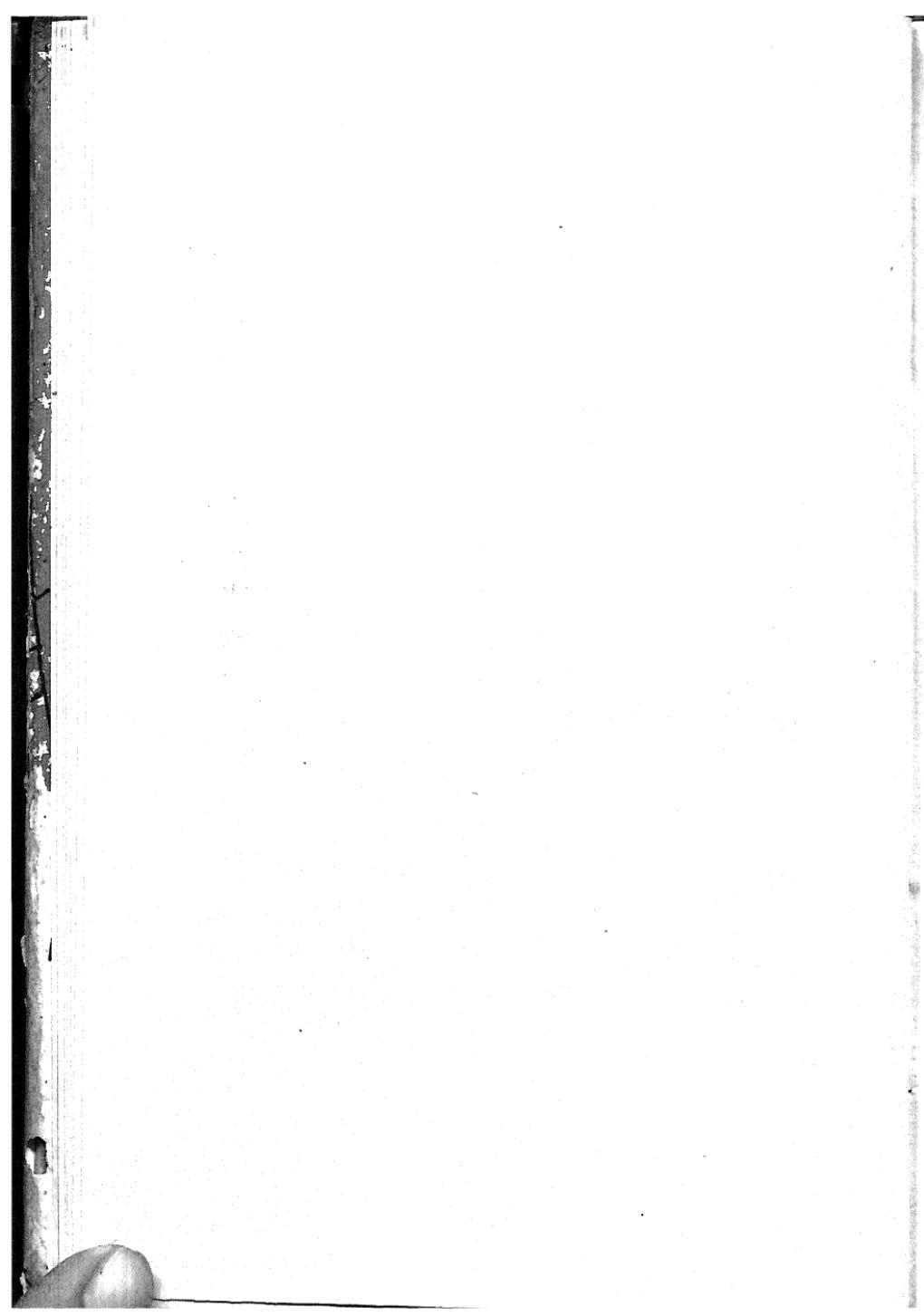
भिक्षु धर्मरक्षित

अनुक्रमणिका

—:o:—

गणतन्त्र की जय

(ईसवी पूर्व दसवीं शताब्दी)

"हम उत्तरापथ से चलकर आये हैं। हमारे पूर्वजों ने तक्षशिला का राज्य त्यागा था। अब हमने शतद्रु और चन्द्रभागा के प्रदेश को भी त्याग दिया। हमारे कुछ बन्धु दक्षिणापथ की ओर बढ़ गये। उन्होंने सरस्वती और शिप्रा के तटों पर निवास करना पसन्द किया। हम आर्य हैं; वीरों की सन्तान हैं। हमारे पूर्वजों ने ही पंचनद को बसाया था। वहाँ के रहनेवाले कोल-भीलों को भगाकर उसे गन्दुम के खेतों से हरा-भरा बनाया था। हमारी गायों ने अपने अमृत-क्षीर से आर्यवंश को बढ़ाया था। हमारे पितामह मालव आज नहीं रहे और न तो हम अपने पैतृक गणतन्त्र में ही रह सके। हमारे ही कुलद्रोहियों ने हमें निर्वासित होने के लिए बाध्य किया। हमें विकट वन-कान्तारों को पार करना पड़ा। अब हमने अनोमा और मही के मध्य अपने नवीन गणतन्त्र की स्थापना कर ली है। पुण्य-सलिला हिरण्यवती के तीर हमारी राजधानी है। कुशीनारा को हमने समृद्ध बनाया है। शालवृक्षों को काटकर इसे रमणीय स्थल बनाकर नन्दनवन-सा अलंकृत कर दिया है। हम मालव की सन्तान मल्ल हैं। मल्ल गणतन्त्र की रक्षा करने में हम अपने प्राणों की बलि चढ़ा देंगे। समय-समय पर होनेवाले किरातों के आक्रमण को सदा के लिए समाप्त कर देना अब हमारा कर्तव्य है। क्या किसी वीर मल्लपुत्र ने सोचा है कि यह कार्य कैसे

होगा ? किस प्रकार हम उन्हें अपने पड़ोस से हटा सकेंगे ?" गणपति प्रभाकर ने मल्लवीरों को सम्बोधित करते हुए आवेश के स्वर में कहा ।

"आर्य ! हमने सोच लिया है । किरातों को अपने पड़ोस से भगाकर ही हम शान्त होंगे । यदि हमने ऐसा नहीं किया, तो हमारे गणतन्त्र की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकती । पश्चिम में मौर्य, कोलिय और शाक्य गणतन्त्र स्थापित हो चुके हैं । उनसे हमें किसी प्रकार का भय नहीं है । हमें तो अब पूर्व में ही किरातों से भिड़ना है । उन्हें मही के तटवर्त्ती प्रदेश से खदेड़कर पर्वतों की ओर भगा देना है और ऐसे व्यूह की रचना कर देनी है कि फिर वे इधर बढ़ने का कभी साहस न कर सकें ।" जय ने प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

"साधु, जय ! तुमने ठीक सोचा है । हमें मही के उस पार भी अपने गणतन्त्र की सीमा बढ़ानी है ।" कुणाल ने अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा ।

"नहीं, कुणाल ! मल्ल-गणतन्त्र की यह प्राकृतिक सीमा है । मही और अनोमा दोनों ही हमारी राज्य-रेखाएँ हैं । इनका उल्लंघन करना ठीक नहीं ।" गणपति ने कहा ।

"तो आर्य ! क्यों नहीं कुछ मल्लपुत्र मही-पार जाकर वहाँ नवीन गणतन्त्र की स्थापना करें और किरातों से सदा के लिए मल्ल-गणतन्त्र को बचाये रखें ।" जय ने कहा ।

"हमें पूर्व के हिंसक पशुओं से युक्त वनों को काटना भी पड़ेगा और नये-नये नगरों एवं निगमों को बसाना होगा ।

बाग्मुदा (बागमती) से भी आगे बढ़कर हमें आर्य-केतु फहराना होगा।" कुणाल ने उत्साहपूर्वक कहा।

"कुछ वीरपुत्रों का निर्वाचन कर लिया जाय और उन्हीं को यह कार्य सौंप दिया जाय।" गणपति ने अपना निर्णय देते हुए कहा।

●

कुशीनारा के शालवन में एक पुष्पित चम्पक वृक्ष के नीचे कुछ तरुणियाँ बैठी गीत गा रही थीं। सब एक गोलाई में बैठी थीं। उनके बीच में एक सूखी लकड़ी का कटा भाग था, जिसपर माला बैठी हुई स्वर-लहरियों के साथ ताल दे रही थी। गीत के मधुर स्वर सुनकर धीरे-धीरे चारों ओर से कुछ स्त्री-पुरुष एकत्र होते जा रहे थे। किसी के हाथ में डण्डा था, कोई पुष्प-गुच्छ लिये हुए था, कोई खाली हाथ चला आ रहा था। अकस्मात् माला उठ खड़ी हुई और उत्तर की ओर संकेत करके चिल्लाती भाग पड़ी—"देखो, देखो, वह दस्यु आया !" उसके भागते ही सब इधर-उधर भाग चले। समवेत स्त्री-पुरुष भी तितर-बितर हो गये।

"माले ! माले !" शालवन की ओर से किसी ने पुकारा। परिचित शब्द सुनकर माला रुक गयी।

"कहो, भैया ! तुम मही-पार से लौट आये ? अकेले क्यों ? क्या मल्ल-सेना ने विजय प्राप्त की ?"

"हाँ, पगली ! तुमने हमें देखकर भागना क्यों प्रारम्भ कर दिया ? क्या डर गयी ? तुमने समझा होगा कि कोई दस्यु आ रहा है ?"

"नहीं, भैया ! मैंने तुम्हें देखा ही नहीं। और लोग कहाँ हैं ? तालेश्वर कहाँ रह गया ?"

"तुम तो तालेश्वर की बात पहले पूछोगी। अच्छा, घबराओ नहीं, मैंने भी निश्चय कर लिया है कि तुम्हारा विवाह उसी से करूँगा। अब स्वयंवर के स्वांग की आवश्यकता न होगी।"

"भैया ! मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर बहका क्यों रहे हो ? क्या कोई विपत्ति तो नहीं आ पड़ी।"

"नहीं माले ! विपत्ति नहीं आ पड़ी। मल्ल-सेना ने पूरे वाग्मुदा-प्रदेश पर अधिकार कर लिया। किरातों का पैर उखड़ गया और वे उत्तर की ओर भाग गये। कुछ मही और वाग्मुदा में मत्स्य-कच्छपों के आहार बन गये। हमने अपने विजित प्रदेश में नये गणतन्त्र की स्थापना कर दी है। तालेश्वर वहीं रह गया है। वह उस गणतन्त्र का प्रथम गणपति होगा। मैं कुछ सैनिकों के साथ इस समाचार को अपने गणपति को देने आया हूँ। सैनिक मेरे पीछे ही आ रहे हैं। वे हिरण्यवती में हाथ-मुख धोने में जरा पिछड़ गये हैं। माले ! तुम भी मेरे साथ ही चलना। तालेश्वर तुम्हारी बहुत चर्चा कर रहा था। मैं तो जानता ही हूँ कि मेरी छोटी बहन उसे हृदय से चाहती है।"

"भैया ! सच ? मैं भी चलूँगी ?" माला ने हँसते हुए अपना सिर झुका लिया।

० ० ०

"अम्मा ! जब तक भैया इन्द्रजीत का विवाह नहीं हो जायेगा और भाभी घर न आ जायेंगी, तब तक मैं विवाह नहीं करना चाहती।" माला ने आग्रहपूर्ण स्वर में कहा।

"माले ! तुम्हारा विवाह तालेश्वर के साथ निश्चित कर लिया गया है। वह तुम्हारी फूआ का पुत्र है और इस समय पूर्वदेश के नवसंस्थापित गणतन्त्र का गणपति है। इन्द्रजीत के योग्य जब कोई कन्या मिलेगी, तब उसका विवाह कर दिया जायेगा। वह तो लड़का है, उसकी क्या चिन्ता ?"

"तो मेरी ही इतनी चिन्ता करने की कौन-सी आवश्यकता पड़ गयी ? यदि मेरे भाई का विवाह न होगा, तो मैं भी विवाह न करूँगी।" माला ने दृढ़ता के साथ कहा।

"अब तक हमारे कुल का वैवाहिक सम्बन्ध मद्रदेश से होता आया है। रक्तसम्भेद न हो, इसीलिए हम लोग वहीं से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। पर अब तो यह बात कठिन है। मद्रदेश यहाँ से बहुत दूर है। शिविदेश में भी विवाह होता था किन्तु वह तो सिन्धु से उस पार और भी दूर है। पीछे, समय मिलने पर, देश में पूर्ण शान्ति स्थापित होने पर इन्द्र शाकल (स्यालकोट) जायेगा और वहाँ की किसी कुलीन कन्या से विवाह कर लेगा।"

"तो भैया को अभी क्यों नहीं भेज देती ? अब तो देश में कोई उपद्रव नहीं।"

"मैं तो भेजना चाहती थी, किन्तु उसका कहना है कि अब भी उत्तर से किरातों के आक्रमण का भय बना हुआ है, इसीलिए उसने पूर्वदेश के लिए प्रस्थान भी नहीं किया है।"

"अम्मा ! भैया से कहो, मैं भी इस बार उनके साथ तीर-धनुष से सन्नद्ध हो किरातों से लड़ने जाऊँगी।"

●

भाद्रपद की काली-काली रात थी। रिमझिम मेघ बरस रहा था। ककुत्था नदी के उद्गम-स्थल पर पड़ाव पड़ा था। पड़ावों में सूखे वृक्षों के तने जल रहे थे। मल्ल सैनिक चारों ओर से घेरकर अपने भींगे हुए वस्त्रों को सुखा रहे थे। उनके पास ही खड्ग, बर्छी, भाले, तीर-धनुष बिखरे पड़े थे। पड़ाव के बाहर रथ खड़े थे। घोड़े खूँटों में बँधे झपकी ले रहे थे। आधी रात का समय था। ककुत्था की दूसरी ओर किरात सैनिक युद्ध के लिए सन्नद्ध खड़े थे। वे शान्त प्रहरी की भाँति मल्लों की गतिविधि का अवलोकन कर रहे थे। इतने में एक मल्ल सैनिक ने दौड़ते हुए आकार किरातों के आ धमकने की बात कही। मल्ल-सेनापति ने युद्ध का तूर्य बजाया। अभी मल्ल सैनिक अस्त-व्यस्त ही थे कि किरात उन पर टूट पड़े। देखते-देखते ही मल्ल सेना के आधे से अधिक सैनिक ककुत्था के तट में सो रहे। इन्द्रजीत किरातों के बीच घिर गया था। माला ने इस भयानक विपत्ति को अपनी आँखों के सामने देख अपने घोड़े को उधर बढ़ा दिया और चण्डी-सी उन पर टूट पड़ी। वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर इन्द्रजीत के पास पहुँच गयी। उसके एक हाथ में बर्छी और दूसरे में खड्ग था। वह छपाछप किरातों को काटती भाई की रक्षा करने लगी। इन्द्रजीत का सारा शरीर क्षत-विक्षत हो रहा था। माला ने किरात सेनापति के ऊपर ऐसी कसकर बर्छी मारी कि वह बर्छी के साथ ही भूमि पर जा गिरा। सेनापति के गिरते ही किरात-सेना के पैर उखड़ गये। वह पीछे की ओर मुड़कर भाग चली। माला ने उनका पीछा करना छोड़ दिया। वह इन्द्रजीत के पास आयी और उसे

उठाकर अपने घोड़े पर रख लिया। उस समय उसके चारों ओर मृतकलेवर ही दिखाई दे रहे थे। उसने देखा कि इन्द्रजीत चेतनाशून्य-सा हो रहा था। उसके शरीर से रुधिर-प्रवाह जारी था। मल्ल सेना के कुछ बचे हुए सैनिकों ने जब देखा कि माला जीवित है और किरात सेना भाग गयी है, तब वे भी उसके पास आ गये। माला उनके साथ कुशीनारा की ओर बढ़ चली। भोर होते-होते वे सब कुशीनारा पहुँचे। नगर का प्रवेश-द्वार खुलते ही सैनिकों ने विजय-सूचक तूर्य बजाया। संस्थागार के सामने सब एकत्र हुए। माला इन्द्रजीत के साथ ही घोड़े से उतरना चाहती ही थी कि इन्द्रजीत का चेतनाशून्य कलेवर भूमि पर आ पड़ा। "भैया!" कहकर माला ने ज्यों ही उसे पकड़ने के लिए सिर झुकाया कि धड़ाम से भूमि पर जा गिरी।

"माले! मैं तुम्हें बधाई देने के लिए पूर्वदेश से आ गया हूँ। धन्य हो माले!" तालेश्वर ने दौड़कर पास आते हुए कहा।

"अब किसे बधाई देंगे आर्य! क्षत्राणी माला भी हम लोगों को छोड़ चलीं!" एक सैनिक ने आँसू पोंछते हुए रुँधे स्वर में कहा।

सभी एक स्वर में बोल उठे—"वीरांगना माला की जय! मल्लवीर इन्द्रजीत की जय! मल्ल-गणतन्त्र की जय!"

दास-मुक्ति

(ईसवी पूर्व सातवीं शताब्दी)

दास प्रथा की विभीषिका से मल्ल जनपद की निर्धन एवं असहाय जनता संत्रस्त थी। श्रेष्ठिवर्ग अल्पधन से ही जठराग्नि एवं सामाजिक कुरीतियों से पीड़ित मानव-सन्तान को खरीदकर मानवता की कलंक——दास-प्रथा से अपने स्वार्थों की सिद्धि में ही प्रसन्न था। राजन्य तथा पौरोहित्य की यह देन मल्ल जनपद की ही नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण आर्यावर्त की पुत्र-पुत्रियों की निर्धनता का अभिशाप बनकर उनके अपने रक्त-मांस के शरीर पर भी प्रभुओं की स्वार्थ-लीला का अभिनय कर रही थी। निर्धन कुल में उत्पन्न होकर जाति, कुल, वंश, धर्म, सम्पत्ति से ही नहीं—— माता-पिता से भी वंचित हो अल्प स्वर्ण-मुद्रा में ही दास-दासी बन जाना पड़ता था। मल्ल राजाओं के यहाँ सहस्रों ऐसी दास-दासियाँ होती थीं, जो जीवन-पर्यन्त भी स्वतन्त्र नहीं हो पाती थीं। पाँच निष्क मात्र से ही खरीदी गई निर्धन सन्तान की सारी इच्छायें, जीवन-सुख एवं मान-मर्यादा को दूसरों के सुख-स्वार्थ के लिए क्रय कर लिया जाता था। दास-दासियों का अपना कोई जीवन नहीं था, वह था केवल मानव के रूप में पशुता का नग्न नर्तन ! दाने-दाने के लिए तरसती निर्धन जनता के लिए दास बन जाने से उत्तम अन्य कोई मार्ग भी तो नहीं था। पेट की ज्वाला और धनिक एवं प्रभुवर्ग के अत्याचार के सामने उसके लिए दूसरा साधन ही कौन था। माँ-बाप अपनी

सन्तान को अपनी आँखों के सामने छटपटाते देखकर भी 'आह' नहीं कर सकते थे। उनकी सन्तान उनके लिए 'अपनी' तक नहीं रह गई थी। 'अपनी' कहने का उन्हें अधिकार भी तो नहीं था। कुशीनारा के खुले आपण में दास-दासियों की बिक्री होती थी। यह आपण प्रति गुरुवार को सुधन्वा नामक वीथि में लगता था, जहाँ विक्रेय दास-दासियाँ दूर-दूर से आती थीं और धनिक-वर्ग उन्हें खरीदकर आनन्द का अनुभव करता था।

उस दिन कुशीनारा में बहुत चहल-पहल थी। वसन्तोत्सव मनाया जा रहा था। तरुण-तरुणियाँ झुण्ड-झुण्ड होकर गीत गाती एक दूसरे को हराने का प्रयत्न कर रही थीं। गीत के मधुर स्वर आनन्द-लहरियों पर थिरकते हुए चारों ओर फैल रहे थे। गीतों में प्रश्नोत्तर के चढ़ाव-उतार से उनके मुखमण्डल की आकृतियों का भी चढ़ाव-उतार स्पष्ट दृष्टिगत होता था। नगर का सिंघाटक एवं संस्थागार (संसद-भवन) का प्रांगण मधुमास के तृषित भ्रमरों को मधुपान कराने के सदृश अलंकृत थे। वाद्य-वृन्द के स्वर भी ताल-लहरियों पर उछल रहे थे। आज अनेक तरुणियों के स्वयंवर का भी आयोजन था। द्वार-द्वार पर लता, पुष्प और पल्लव लटक रहे थे। घरों की भित्तियाँ रंगी-पुती थीं और उन पर हल्दी के पंचांगुल एवं हंस, मयूर, हस्ति, अश्व, शुक, सारिका तथा करवीक के चित्र बने थे। कतिपय घरों के आँगन धनवती में लगे पीत-ध्वज से फहरा रहे थे। नगर धूप, चन्दन, देवदारु आदि की सुगन्धियों से गमगमा रहा था। जन-समुदाय नये वस्त्रों से वेष्टित गतिशील मूर्तियों की भाँति जान पड़ता था। मानो आज इन अलंकृत मूर्तियों की

कोई शोभा-यात्रा निकली हो। रह-रहकर गीत के ये शब्द दिशाओं में व्याप्त हो रहे थे :—

कौन तुम्हारे मंगलदाता कौन तुम्हारे दानी हैं।
हम तो अपनी मल्लभूमि की प्यारी-प्यारी रानी हैं॥
मल्ल देश के राजा हम तो मल्लभूमि के दानी हैं।
देश हमारा प्यारा-प्यारा हम इसके अभिमानी हैं॥

सारा वातावरण ही संगीतमय हो गया था। आज राज-परिवार एवं जनसाधारण में कोई अन्तर नहीं था। सब एक साथ समानभाव से आनन्दमग्न थे।

"पुक्कुस! क्या तुम्हें यह उचित है? यही मल्लों की परम्परा है? क्या यही मल्ल राजवंश की वंशानुगत मर्यादा है?" चक्रपाणि ने पुक्कुस राजकुमार को रोकते हुए पूछा।

"मल्लों की जो भी मर्यादा हो, किन्तु इतना तो मैं जानता हूँ कि सभी मानव हैं। धन की विषमता उन्हें अलग नहीं कर सकती।"

"हाँ, हाँ, अब इन्हें क्यों विभेद जान पड़ेगा। इस दासी के साथ आनन्दोत्सव मनाते हुए अपनी कुल-मर्यादा का क्योंकर ध्यान रहेगा?" कंचना ने बीच में ही बात काटते हुए व्यंग मारा।

"नहीं दीदी! ऐसी बात नहीं है। मुझे सब कुछ ज्ञात है और सबका ध्यान है; किन्तु यह भी जानता हूँ कि दास-दासियों का भी जन्म हमारे समान ही हुआ है। इनके शरीर की बनावट भी हमारे जैसी ही है। इनके नसों में भी अरुण रक्त ही प्रवाहमान है। इनके हृदय में भी ममता है। इनके माता-

पिता की आर्थिक परिस्थितियों से लाभ उठाकर हमें इन मानव-सन्तानों के साथ अन्याय नहीं करना चाहिए।''

''तुम्हें तो भाषण देना आता है न! क्यों नहीं ऐसा भाषण संस्थागार के अधिवेशन में देते हो? यह भी दासी होकर एक राजकुमार का हाथ पकड़े खड़ी है। हट जा यहाँ से। लज्जा नहीं आती? अपने आँचल में सूर्य छिपाना चाहती है।'' चक्रपाणि ने कहा।

''नहीं भन्ते! ऐसा नहीं हो सकता। इसमें श्यामा का कोई अपराध नहीं है। मैंने स्वयं ही इसका हाथ पकड़ा है। यह मेरी जीवन-संगिनी होगी। मैं वचन-बद्ध हूँ।'' पुक्कुस बोल ही रहा था कि कंचना ने श्यामा को थप्पड़ दे मारा और ऐसे जोरों से ढकेला कि वह कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ी।

''चली है मल्लराजकुमार के साथ रास रचाने। फिर यदि कभी देखा तो तेरी चमड़ी उधेड़ लूँगी। ऐसा साहस तूने कैसे किया? चलो भैया, इन नीचों का मुँह देखना भी बुरा है।'' कंचना ने कहते हुए चक्रपाणि का हाथ पकड़ कर खींचा और वे दोनों प्रासाद की ओर चल पड़े।

(२)

''प्रिय! मुझे भूल जायँ। मैं अभागिनी हूँ। एक दासी राजकुमार से कैसे प्रेम कर सकती है। उसका जन्म तो अपने आर्यों एवं आर्याओं को प्रसन्न करने मात्र के लिए हुआ है। वह तो उनके सुख का साधन है। हाँ, मैं दासी हूँ, किन्तु मेरे माता-पिता दासी-दास नहीं थे, वे भी आर्य-आर्या थे। मेरा दुर्भाग्य कि बेचारों के पास खाने-पीने के लिए कुछ नहीं रहा।

हिरण्यवती की बाढ़ में सभी खेत डूब गए। घर भी बह गया। शालि, व्रीहि तथा गोधूम एक मुट्ठी भर भी प्राप्त नहीं हुए, ऋण लेकर मेरे पिता ने मुझे पाला-पोसा; किन्तु ऋण का बोझ इतना बढ़ गया कि बेचारे मेरे माता-पिता को मुझे ५ निष्क में बेच देने पर विवश हो जाना पड़ा। वे स्वयं भी बिक गए, तब कहीं ऋण से उऋण हो सके। स्वामी ! आप नहीं जानते हैं, वे कभी-कभी सन्देशवाहक के रूप में पावा से यहाँ आते हैं और मुझे दूर से ही देख कर चले जाते हैं। मैं जब उन्हें देखती हूँ तब मन करता है कि उनके साथ ही भाग जाऊँ, किन्तु हाय री विवशता ! हम दास-दासियों का मन और शरीर भी तो अपना नहीं रहा। हमारे जनक और जननी भी अपने नहीं रहे। आपके इस नगर में मैं अन्य सुन्दरियों से कुरूप नहीं हूँ, किन्तु मेरा अपराध यही है कि मैं दासी हूँ, इसीलिए सब मुझसे घृणा करते हैं। केवल आप मुझे चाहते थे, आप ही मुझे जीवन में अपने मिले थे। अब आपके साथ से मुझे जो भुगतना पड़ा और आपका भी मेरे कारण जो अपमान हुआ, उसे मैं कभी भी भुला नहीं सकती। अभी भी मेरी पीठ दुख रही है। उस दिन कंचना आर्या ने मुझे कैसे पीटा था। आर्य चक्रपाणि को भी दया नहीं आई। पीटते समय उन्होंने भी तो उन्हें नहीं रोका था।" श्यामा पुक्कुस के बायें कन्धे पर सिर टिकाये कहते हुए झिलस पड़ी।

"नहीं श्यामे ! मैं तुमसे कदापि अलग नहीं हो सकता। मल्लों की कोई भी शक्ति अपनी प्रियतमा से मुझे वंचित नहीं कर सकती। इस नगरी में तुम्हारे समान एक भी सुन्दरी नहीं

है। तुम्हारा रूप मद्रदेश की रमणियों जैसा निखरा है। मैं तुम्हारे मुख-मण्डल की छबि देखते हुए सदा ही आनन्द का अनुभव करता हूँ और अपना भाग्य सराहता हूँ कि तुम जैसी सुन्दरी मेरी अर्द्धाङ्गिनी होगी। हम शीघ्र ही प्रणय-सूत्र में बँध जायेंगे। तुम बुरा मत मानो। इसमें मेरा तनिक भी दोष नहीं है। उस दिन मेरे भाई-बहिनों ने तुम्हारा जो अपमान किया, उसका मुझे हार्दिक दु:ख है, किन्तु उनसे बदला क्या लेना ? उन्हें स्वयं सुबुद्धि आयेगी और वे अपनी गल्ती के लिए क्षमा माँगेंगे। तुम्हें राजदरबार के ही नहीं, प्रत्युत पूरे मल्ल-जनपद के दास-दासियों के जीवन-दु:ख का ज्ञान होगा। बेचारे चरण-धूलि से भी गये-बीते हैं।''

''जानती हूँ स्वामी ! हम दस-दासियों का जीवन अन्न-जल के समान प्रभुओं की सेवा के लिऐ सदा प्रस्तुत रहना चाहिए। वे चाहें जैसा भी हमारा उपयोग करें। आह भी नहीं भरनी चाहिए और मूक मूर्ति की भाँति सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिए। चाहे पेटभर भोजन भी क्यों न मिले, तन ढाँकने के लिए वस्त्र भी न मिलें किन्तु अहर्निश अबाध गति से आज्ञाओं का पालन होना चाहिए।''

''हाँ, यह तो बड़ी ही बुरी बात है कि दास-दासियों के वस्त्र भी आर्यों से भिन्न रहें। देखते ही पहचाना जा सके कि कौन दास-दासी हैं और कौन आर्य-आर्या।''

''प्रिय ! भेद इतने में ही है। घरों में क्या होता है, इससे आप भली प्रकार परिचित हैं। सदाचार एवं धर्म के दम्भी लोग भी हम दासियों को ऐसे देखते हैं, जैसे हम उनकी वासना-

पूर्ति के साधन हों। क्या आपको नहीं मालूम की आर्य चक्रपाणि मेरे पीछे कैसे उन्मत्त से रहा करते हैं। उस दिन आपके साथ मुझे देख कर उन्हें निराश-प्रेमी की ईर्ष्या हो आयी।''

''जानता हूँ प्रिये! मैं इन सब बातों से भली प्रकार परिचित हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि राजकुमारी काकन्दी दास-पुत्र ऋषभ को चाहती है और स्वयंवर में उसे ही जयमाला पहनाना चाहती है।''

''मैं समझती थी कि यह बात छिपी है। इसे कोई नहीं जानता है। अब तो ऐसा लगता है कि यह गुप्त प्रेम भी प्रकट हो चुका है।''

''हाँ, श्यामे! आजकल सारे नगर में दो ही चर्चा के विषय हैं हम और वे। हमलोग इस अन्यायपूर्ण नगरी में, इस मल्लों की उर्वरा भूमि में एक नया मोड़ लाना चाहते हैं। यही नहीं, पूरे आर्यावर्त में हम आदर्श होंगे। मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊँगा और काकन्दी ऋषभ को अपना पति बनायेगी। पति, पत्नी का निर्वाचन तो हमारी इच्छा पर निर्भर होना चाहिए और उसमें भी जाति, धर्म, वंश, कुल, जन्म का बन्धन नहीं रहना चाहिए। हम सभी दास-दासियों को स्वतंत्र करायेंगे। सुना है कि कम्बोज में आर्य दास और दास आर्य हो सकता है। दास-दासियाँ वहाँ जब भी स्वतंत्र की जा सकती हैं और फिर उनसे किसी प्रकार का दुराव नहीं रह जाता। मल्लों की यह प्रज्ञप्ति उचित नहीं कि जो एक बार दास-दासी हो गए, वे जीवन-पर्यन्त दास-दासी ही रहेंगे और उनकी सन्तान भी; चाहे वह मल्लों के संसर्ग से ही क्यों न उत्पन्न हुई हो। बेचारे ये

नन्हें-मुन्ने माता के पेट से ही दास-दासी होकर उत्पन्न होते हैं। कैसा है अधर्म ! अन्याय !! इसका अन्त होना ही चाहिए।" पुक्कुस ने आवेश में आकर कहा।

"स्वामी ! आपकी बातें मुझे आत्मविभोर कर रही हैं, किंतु साथ ही भय भी हो रहा है कि मैं इस षड़यन्त्र में मार न डाली जाऊँ। आपका तो कुछ नहीं होगा, किन्तु मैं दासी......।"

"नहीं, प्रिये ! ऐसा मत सोचो। तुम्हारा कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यदि मरना होगा तो हम दोनों एक साथ मरेंगे।" पुक्कुस ने सान्त्वना देते हुए कहा।

(३)

कुशीनारा की विनिश्चय-शाला लोगों से भरी हुई थी। सब उत्सुकतापूर्वक विनिश्चय महामात्य की बात सुन रहे थे। सामने बन्दी के रूप में श्यामा और ऋषभ खड़े थे। उनके पीछे पंक्तिबद्ध कुन्तधारी पुरुष आज्ञा-पालन के लिए प्रस्तुत थे। रह रहकर बाहर तुमुल शब्द हो उठता था। कभी-कभी तुमुल-घोष को चीरता हुआ पुक्कुस का उच्चस्वर सुनाई पड़ जाता था—"यह अन्याय है। यह अधर्म है।"

"सुनो, तुम दोनों बन्दी ध्यानपूर्वक अपने अपराधों को सुनो और जो कुछ भी इसके विरुद्ध कहना हो, कहो। श्यामा पर मल्ल गणतंत्र के प्रमुख राजवंश हेम वाशिष्ट के पुत्र पुक्कुस को बहकाने का अपराध है। इस पर यह भी दोषारोपण है कि इसने भोले राजकुमार को विद्रोह के लिए उभाड़ा है और दासी होते हुए भी उससे विवाह कर राजवंश की मर्यादा को ठेस

पहुँचायी है। मल्लों की प्रवेणी-पुस्तक के अनुसार ऐसे व्यक्ति मृत्युदण्ड के भागी हैं जो देश में उपद्रव एवं अशान्ति उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी सिद्ध हों। राजकुल के अपमान के अपराध में भी मृत्यु-दण्ड की ही व्यवस्था है। दासी! इस सम्बन्ध में तुम क्या कहना चाहती हो?''

''भन्ते विनिश्चय महामात्य! मेरा अपराध केवल इतना ही है कि मैं दासी हूँ और मुझे दासी बनाने का सारा उत्तरदायित्व मल्लों पर है। उन्होंने ही मेरे माता-पिता को ऋण में फँसा कर मुझे क्रय कर लिया। मेरे भी नसों में आर्य-रक्त है। मैंने राजकुमार पुक्कुस को बहकाकर उनसे विवाह नहीं किया है। वे मेरे स्वामी हैं। आर्य हैं। उन्होंने ही मेरा हाथ पकड़ा और मुकुटबन्धन जैसे पवित्र चैत्य के पास हिरण्यवती माता को साक्षी देकर मुझे अपना बनाया। अब मैं दासी नहीं, मल्ल-वधू हूँ। मुझे मृत्युदण्ड दे दिया जाय। मैं सहर्ष इसे स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ। आज यह विनिश्चय शाला दासी को नहीं, किन्तु एक मल्ल-वधू को मृत्युदण्ड देने का गौरव प्राप्त करेगी और मेरे रक्त की धारा से मल्लभूमि सदा सुहागिनी बनी रहेगी। अन्त में मैं अपनी इस धृष्टता के लिए आपसे क्षमा चाहती हूँ और प्रार्थना करती हूँ कि मेरा यह सन्देश मेरे स्वामी तक पहुँचा दिया जाय कि उनकी प्रियतमा उन्हें अपने हृदय में लेकर जा रही है। उनका प्रेम सदा अमर रहे।'' बिलखकर कहती हुई श्यामा जमीन पर लुढ़क गई।

''ऋषभ! तेरा यह अपराध है कि तूने दास होते हुए भी राजकुमारी काकन्दी को बहकाकर उससे विवाह करने का

दुस्साहस किया। स्वयंवर में जयमाला तुझे पहनायी और तूने प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार कर मल्ल-मर्यादा को नष्ट किया। यही नहीं, तूने राजकुमारी के सतीत्व पर कीचड़ उछाला और राजवंश का अपमान किया। मल्ल-संविहित के अनुसार तुम भी मृत्युदण्ड के अपराधी हो। तुझे क्या कहना है?'' विनिश्चय-महामात्य ने ऋषभ से पूछा।

''भन्ते महामात्य! मैं दास-पुत्र हूँ। मेरे माता-पिता भी दास थे। मैं भी दास होकर ही उत्पन्न हुआ। मेरी सारी तन्तुयें दासता के आवरण से ढँकी हैं, किन्तु मृत्युदण्ड का अपराधी होने के कारण मैं कुछ निवेदन करने का साहस कर रहा हूँ। क्षमा किया जाय। मैं जानता हूँ कि मैं दास हूँ, किन्तु मेरे हृदय में भी स्नेह है। मैं पत्थर की मूर्ति नहीं हूँ। राजकुमारी काकन्दी का मैं सेवक था। राजपरिवार ने मुझे यह भार देकर अनुचित कार्य किया। जाने-अनजाने राजकुमारी का खिचाव मेरी ओर होता गया और उन्होंने मुझे भय देकर अपने साथ ज्योत्स्नापूर्ण रात्रि में उद्यान-भ्रमण के लिए विवश किया। मेरा भावुक हृदय भी राजकुमारी के प्रेमालाप में दास होने के बन्धन को तोड़ बैठा और उन्होंने मुझे वचनबद्ध करा लिया कि मैं उनकी जयमाला को अवश्य ही स्वीकार कर लूँगा, चाहे मार ही क्यों न डाला जाऊँ। मुझे दोनों प्रकार से मृत्युदण्ड ही मिलना था। राजकुमारी के प्रेम को अस्वीकार करके भी और स्वीकार करके भी। मैंने उचित समझा कि राजकुमारी के साथ प्रणयसूत्र में बँधकर एक मल्ल-वधू के पति के रूप में अपना अन्त करूँ। इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। अब मैं

मल्ल-पुत्र हूँ। मेरी दासता उसी समय समाप्त हो गई जब कि एक मल्ल-पुत्री ने मेरा वरण किया जिसका कि मैं दास था। मुझे और कुछ कहना नहीं है। मैं इस मृत्युदण्ड से आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। मेरी अन्तिम इच्छा है कि मेरी प्यारी पत्नी काकन्दी तक यह सन्देश पहुँचा दिया जाय कि मैं जा रहा हूँ किन्तु वह कभी भी दु:ख न मानेगी। मेरे रुधिर से सिक्त यह मल्लभूमि उसे आशीष देगी और उस मल्ल-वधू की ममता मुझ मल्ल-पुत्र के हृदय में सदा पल्लवित रहेगी।" ऋषभ कहते हुए रो पड़ा।

"नहीं, इन्हें मृत्युदण्ड नहीं दिया जायगा। अब ये दास-दासी नहीं रहे। ये भी मेरे पुत्र-पुत्री हैं। इन्हें स्वतंत्र किया जाय। इनका कोई अपराध नहीं है। अपराधी हम लोग ही हैं जो कि दास-प्रथा के संचालक हैं। प्रेम पर सबका समान अधिकार है। हम सभी एक ही आर्य-सन्तान हैं। देखो, पुक्कुस ! अपनी श्यामा के बन्धन खोलो और तुम काकन्दी ऋषभ को सम्हालो।" मल्लगणतंत्र के शासनाध्यक्ष हेम वाशिष्ट ने कहते हुए दोनों युग्मों को मालायें पहनायीं। जनता ने पुष्पों की वर्षा की और सारी विनिश्चय-शाला गूँज उठी—"मल्ल नरेश हेम की जय ! दासता मुक्त हो !!"

(४)

मल्ल जनपद के दासों की यह मुक्ति-कथा बहुत प्राचीन है। मल्ल जनपदवासी इसे सदियों से भूल चुके हैं। मल्लों के वैभव एवं उनकी राज्यश्री पर विस्मृति का आवरण पड़ चुका

है, किन्तु आज भी कुशीनगर के वर्तमान नष्टावशेष अनुरुधवा नामक ग्राम में, अर्द्धनिशा में यह समवेत गान सुनाई देता है—

कौन तुम्हारे मंगलदाता कौन तुम्हारे दानी हैं।
हम तो अपनी मल्लभूमि की प्यारी प्यारी रानी हैं।।
मल्ल देश के राजा हम तो मल्ल भूमि के दानी हैं।
देश हमारा प्यारा-प्यारा हम इसके अभिमानी हैं।।

मल्ल-वधू

(ईसवी पूर्व छठीं शताब्दी)

मल्ल-गणतंत्र की राजधानी कुशीनारा चतुर्दिक् सुदृढ़ प्राकार से घिरी थी। चारों दिशाओं में एक-एक प्रवेश-द्वार बने थे। नगर के पूर्व हिरण्यवती तथा पश्चिम में खाणुका सरितायें बहती थीं। उत्तर में शालवन उद्यान था। शालवन उद्यान से राक्षस-सर होते हुए शाल-पंक्तियाँ पूर्वमुख जाकर नगर की ओर मुड़ी थीं, उन्हें उपवत्तन कहा जाता था। उपवत्तन से ही राजमार्ग जाता था। नगरी वीथियों एवं रथ्याओं में विभक्त थी। गृह सुनिश्चित पंक्तियों और आकारों में निर्मित थे। स्थान-स्थान पर शाल, नीप, न्यग्रोध और अश्वत्थ के छायादार वृक्ष लगे थे। वणिक-वीथी उत्तर-पूर्व दिशा में थी। वहीं एक प्राचीन आव-सथागार (अतिथिशाला) था, जिसमें नवागत व्यक्ति रात्रि में विश्राम करते थे। नगर के पूर्वी द्वार पर भी एक अतिथि-गृह था, जिसमें रात्रि में नगर के प्रवेश-द्वार के बन्द हो जाने पर असमय में आये हुए लोग निवास करते थे। प्रवेश-द्वार एक प्रहर रात्रि बीतने पर सदा बन्द हो जाता था और भोर होने पर खुलता था। इस नियम का कभी उल्लंघन नहीं होता था। हिरण्यवती के तीर पर मुकुट-बन्धन नामक एक प्राचीन चैत्य था, जहाँ मल्ल गणतंत्र के सदस्य एवं गणपति हिरण्यवती में स्नानकर शपथ ग्रहण करते थे। उस स्थल को अभिषेक-तीर्थ भी कहते थे। प्रणय-बन्धन के लिए वह महातीर्थ था।

कुशीनारा में नवीन संस्थागार (संसदभवन) बन कर तैयार हो गया। नवनिर्वाचित गणपति रोजमल्ल के कर-कमलों द्वारा उसका उद्घाटन हुआ। मल्ल जनपद के सभी गण-सदस्य कुशीनारा में आये। वन-महोत्सव एवं जलक्रीड़ा के उपरान्त मल्ल-नृत्य का आयोजन हुआ। नृत्य में झाँझ, मृदंग, शंख, प्रणव, वीणा, भेरी और शृङ्गी का स्वर-सामरस्य था। संस्थागार के प्रांगण में एक सुन्दर मण्डप बना था, जिसमें नृत्य-मंच निर्मित था। मल्ल-नृत्य में सम्मिलित होनेवाले सभी व्यक्तियों को निज कला-प्रदर्शन के पश्चात् गणपति द्वारा विभिन्न प्रकार के पुरस्कार प्रदान किये जा रहे थे। आज के उत्सव में वासुकि-मल्ल की रूपवती कन्या मल्लिका को सर्वाधिक पुरस्कार प्राप्त हुए। सबकी दृष्टि उसकी ओर लगी ही थी कि वज्रपाणि-मल्ल ने उठकर गणपति की अनुमति चाहते हुए घोषणा की—'भन्ते गण, मेरी सुनें। यदि गण को पसन्द हो तो तक्षशिला से शिल्प सीखकर लौटे हुए बन्धुल मल्ल की हम परीक्षा लें और यदि वह अस्त्र-शस्त्र संचालन में निपुण हो तो उसे गण की ओर से सेनापति का विशेष स्थान दिया जाय।'

'ऐसा मत बोलो वज्र! हमारे गणराज्य के सभी नागरिक वीर सैनिक हैं। सभी सेनापति, राजा, राजमंत्री और महामात्य हैं। राजतंत्रों की भाँति यहाँ राजा, राजमंत्री और सेनापति की आवश्यकता नहीं। तुमने इस प्रस्ताव को रख कर मल्ल गणतंत्र का अपमान किया है।' छत्रदत्त ने कड़े शब्दों में कहा।

'नहीं, ऐसा नहीं। यह तो गणतंत्र की प्रथा है कि जहाँ सभी सदस्य उपस्थित हों, वहाँ अपने विचार स्वतन्त्र रूप से

प्रगट कर सकते हैं। इसमें अपमान की कौन-सी बात है ! बन्धुल मल्ल के सम्बन्ध में मैंने जो प्रस्ताव रखा है, उसे सहर्ष वापस लेता हूँ।'

'नहीं वज्र ! तुम्हारे प्रस्ताव के औचित्य पर विचार होना ही चाहिए। उसे वापस लेने की आवश्यकता नहीं। तक्षशिला से विद्याध्ययन करके लौटे हुए बन्धुल की सबसे पहले परीक्षा होनी चाहिए। कोई एक दिन ऐसा निश्चित कर लिया जाय कि जिस दिन बन्धुल अपनी कला का प्रदर्शन करे और सभी गण-सदस्य उसका अवलोकन करें। उसके पश्चात् बन्धुल के योग्य विचार किया जाय।' जयगुप्त ने प्रस्ताव रखते हुए कहा।

'गण, मेरी सुनें। यह निश्चित किया जाता है कि माघी पूर्णिमा के महापर्व पर बन्धुल मल्ल की अस्त्र-शस्त्र-परीक्षा होगी। गण के सभी सदस्यों को उक्त अवसर पर उपस्थित रहना आवश्यक है।' गणपति ने अपना निर्णय सुनाते हुए आज का कार्य-क्रम समाप्त किया।

●

पौष पूर्णिमा की चन्द्रिका से युक्त चन्द्रमा पूर्व-लोकधातु से ऊपर उठ चुका था। हिरण्यवती-तट पर परिभ्रमणार्थ आया हुआ जनसमूह इधर-उधर विचर रहा था। पक्षियों का संचार बन्द-सा हो गया था। कभी-कभी हंस, गैरी, हारिल आदि पक्षियों के झुण्ड आकाश में तीव्रगति से उड़ते निकल जाते थे। इसी समय नगर से एक सुसज्जित रथ आया और मुकुट-बन्धन के पास रुक गया। उसमें से एक तरुण और एक रूपसी वाहीतिक ऊष्णा से निर्मित इंगुरी धारणियों को धारण किये राजसी वेशभूषा में निकले। वे हिरण्यवती में एक पूर्व नियो-

जित व्यक्ति के संकेत पर नौका-विहार के लिए द्रोणी में विराजमान हो गए ।

'आर्यपुत्र ! मैंने संस्थागार के उद्घाटन के दिन पुरस्कार-वितरण के अवसर पर आपका नाम सुना था और आपके सम्बन्ध में हुई वार्ता एवं प्रस्ताव से भी जाना था । उस दिन यह नहीं सोचा था कि आप जैसा वीर पति मुझे प्राप्त होगा । मैं कितनी सौभाग्यशालिनी हूँ !' रूपसी ने प्रमदा स्वर में सामोद कहा ।

'मल्लिके ! मैंने भी उसी दिन तुम्हारे सम्बन्ध में अपने मामा वज्रपाणि मल्ल से सुना और जाना था कि तुम्हें गणपति द्वारा सर्वोत्तम पुरस्कार प्रदान किया गया है । उस दिन तुम जनपद-कल्याणी-सी उस रंगशाला में शोभायमान थी ।'

'आप भी क्या व्यंग कर रहे हैं ? जाने दीजिए, इस बात को । मुझे तो उसी दिन ऐसे भाव हो आए कि कब मैं ऐसे वीर को देख सकूँगी । न जाने किस जन्म के मेरे पुण्य जाग पड़े, जो आप मुझे प्राप्त हो गए ।'

'देखो मल्लिके ! तुम्हारा यह सुन्दर मुख-मण्डल चन्द्रमा-सा हिरण्यवती की जलधार में कैसा चमक रहा है । यदि जल स्थिर होता तो तुम्हारा सौंदर्य तुम्हें बिना देखे, नदी में ही देखा जा सकता । तुम परम सुन्दरी हो !'

'आप तो सदा मेरे ही रूप-गुण की प्रशंसा किया करते हैं । क्या आपने सुना है कि माघी पूर्णिमा के दिन आपकी परीक्षा में क्या किया जानेवाला है ?'

'हाँ, मल्लिके ! मैंने सुना है कि मल्ल वीर मेरे असि-प्रहार

को देखना चाहते हैं और इसके लिए साठ बाँसों के कलाप अभी से बाँध रखे हैं, जिन्हें मुझे क्रमशः एक-एक प्रहार में ही काटना होगा। साठ क्या, यदि सौ भी कलाप हों तो मैं उन्हें अजासिर की भाँति एक ही प्रहार में काट सकता हूँ। तक्षशिला के दिशा-प्रामोख्य आचार्य के पास शिक्षा प्राप्त कर लौटने पर किसी को भी मेरे शिल्प-गुण के प्रति सन्देह नहीं करना चाहिए।'

'धन्य हैं आर्यपुत्र ! आपकी विजय निश्चित है। एक दिन आप मल्ल गणतंत्र के गणपति बनेंगे।'

●

'आर्य ! मैं चाहता हूँ कि इन दुष्ट मल्लों को मारकर अब स्वयं ही यहाँ का राज्य करूँ।' बंधुल मल्ल ने अहंकारपूर्ण स्वर में कहा।

'पुत्र ! क्यों ? मल्लों ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?' ताराबल ने प्रेमभाव से पूछा।

'नहीं जानते हैं, आर्य ? इन मल्लों ने वीर होने का ढोंग रचा है। ये दम्भी और नीच हैं। इन्होंने मेरी परीक्षा के समय बाँसों के बीच लोहे की छड़ें डाल रखी थीं और मुझसे कहा भी नहीं। मेरे प्रति मानो किसी के हृदय में स्नेह ही नहीं। यदि मैं जानता तो लोहे की छड़ों के साथ बाँसों को ऐसे काटता कि शब्द तक न होता। अब इनके हृदय का कलुष प्रगट हो गया है। ये ईर्ष्यालु हैं। इन्हें समाप्त करने में ही कल्याण है।'

'पुत्र ! यह प्रवेणी (वंशानुगत) राज्य है, यहाँ ऐसा नहीं कर सकते। यदि तुम ऐसा करना चाहोगे तो हम लोगों का यहाँ रहना कठिन हो जायेगा।'

'यदि ऐसी बात है और आप भी चाहते हैं कि ये अपनी वीणा स्वच्छन्द बजाते रहें, तो मुझे जाने दें ।'

'कहाँ जाओगे पुत्र ?'

'मैं अपने मित्र के पास श्रावस्ती जाऊँगा। श्रावस्ती के राजकुमार प्रसेनजित् और वैशाली के लिच्छवी-राजकुमार महाली मेरे सहपाठी हैं। हम तीनों ने तक्षशिला में एक साथ शिक्षा पाई है। प्रसेनजित् अब कोशल-नरेश बन चुका है। उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की थी कि मैं उसके ही साथ श्रावस्ती में रह जाऊँ, किन्तु मैंने यहाँ आना उचित समझा। आप लोग भी तो यहीं थे। अब मैं वहीं जाऊँगा।'

'अच्छा पुत्र! यदि तेरी यही इच्छा है तो जा। मैं कल तेरे जाने की तैयारी कर दूँगा। मल्लिका को भी साथ लेते जाना। वह बेचारी, अकेली यहाँ कैसे रहेगी। हम लोग समय-समय पर आया करेंगे।'

●

'अब कोई चिन्ता न करें, आर्ये! यहीं कुशीनारा में रह कर समाधि-भावना में समय लगायें।'

'मैं चिन्ता नहीं करती नन्दे! मैं मल्ल-वधू हूँ। मल्लवधुएँ पति-वियोग में चिन्ता नहीं करतीं। वे अपने कुल धर्म का पालन करती हैं। जन्म, मृत्यु, व्याधि तो संसार का स्वभाव-धर्म है। तुम नहीं जानती कि वे मुझे कितना मानते थे। जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र सुमन गर्भ में था, तब इच्छा हुई थी कि मैं वैशाली के लिच्छवियों की अभिषेक-मंगल-पुष्करिणी में स्नान करूँ और जल पिऊँ। उस समय किसी बाहरी व्यक्ति के लिए वैशाली की

उस पुष्करिणी में उतरना मृत्यु से खेलना था, किन्तु मेरे पतिदेव उसके लिए सन्नद्ध हो गए। मुझे राजरथ पर बैठाया और श्रावस्ती से वैशाली के लिए चल पड़े। मैंने प्रेमपूर्वक पुष्करिणी में स्नान किया और जल पिया। जब हम लोग लौटने लगे, तब लिच्छवी-सेना ने पीछा किया। उस समय मैंने रथ सम्हाला और उन्होंने पीछा करते हुए पंक्ति-बद्ध पाँच सौ लिच्छवियों को एक ही तीर में धराशायी कर दिया।' मल्लिका ने नि:श्वास छोड़ते हुए उत्साहित होकर कहा।

'आर्ये ! वे तो अद्भुत वीर थे !'

'हाँ, नन्दे ! वे कोशल-नरेश के प्रधान सेनापति थे। उन्होंने ही तो काशी जनपद के लिए बार-बार होने वाले प्रसेनजित् और अजातशत्रु के युद्धों में विजय पाई थी। यदि वे न होते तो कोशल-नरेश की सेना काशी पर भला कब अधिकार कर पाती। किन्तु, उनका पराक्रम अन्य कर्मचारियों से नहीं देखा गया। वे ईर्ष्या करने लगे और राजा को भड़का कर उन्हें मेरे भीम-अर्जुन जैसे महाप्रतापी वीर पुत्रों के साथ हो उपद्रव शान्त कर काशी से आते समय अचिरवती (राप्ती) के तीर पर मरवा डाला। मेरे पतिदेव ने अपने औरस पुत्रों के साथ ही स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और मैं अपनी पुत्र-वधुओं के साथ रोती-कलपती सांसारिक दु:ख भोगने के लिए रह गई।' कहते-कहते मल्लिका की आँखों में आँसू भर आये।

'आर्ये ! प्रसेनजित् बड़ा धूर्त और छली था !'

'नहीं नन्दे ! प्रसेनजित् को बहकाया गया था। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरे पुत्र और पतिदेव निर्दोष थे, तब उन्होंने

मेरे पास आकर क्षमा माँगी। मैंने बहुत ही मना किया, समझाया, किन्तु तुम्हारे भागिनेय दीर्घकारायण ने अवसर हाथ लगते ही विडूडभ को राजा बना दिया और प्रसेनजित् को राज्य से निर्वासित कर दिया। बेचारे इस धार्मिक राजा की मृत्यु राजगृह के प्रवेश-द्वार पर अनाथों-जैसी हुई। दीर्घकारायण और विडूडभ भी तो नहीं रह सके। उन्हें भी अचिरवती ने सदा के लिए अपनी गोद में समेट लिया। कर्मफल की लीला विचित्र है, नन्दे !'

'आर्ये ! मृत्यु सबसे बली है। देखें न, भगवान् बुद्ध जैसे महापुरुष का भी परिनिर्वाण हो गया। आज ही उनकी रथी मुकुट-वन्धन जाने वाली है।''

'हाँ, नन्दे ! मेरे परम आराध्यदेव भी अब न रहे। मैंने उन्हीं की शरण में अपने को समर्पित कर दिया था और उन्हीं के उपदेशों पर चलना अपना लक्ष्य बना लिया था। अहा, तथागत कैसे करुणालु थे ! जब बहुत दिनों तक मेरे सन्तान न हुई और मेरे पतिदेव ने मुझे वन्ध्या समझकर कुशीनारा चले जाने के लिए आदेश दे दिया, तब तथागत ने ही मुझे रोका था। वे मेरे धर्म-पिता थे। सदा उनकी असीम दया मुझ पर बनी रहती थी।'

'आर्ये ! लो, भगवान् की रथी आ गई। ये शब्द शालवन के ही वाद्यों के हैं। आज से एक सप्ताह पूर्व वैशाखी पूर्णिमा को शालवन में युगल-शाल वृक्षों के मध्य बिछे आसन पर तथागत का परिनिर्वाण हुआ था। उस दिन देखा न आपने ? समुद्र जैसा जनसमूह उनके दर्शनार्थ उमड़ता हुआ शालवन चला

आ रहा था। भिक्षुओं की अपार भीड़ थी। असमय में शालवृक्ष तक पुष्पित हो गए थे। आकाश से भी दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई थी। आपने तो अपने आँसुओं से तथागत के पैर पखारे थे!'

'नन्दे! अब जाने दे इन बीती बातों को। शीघ्रता कर। मेरे महालता-प्रसाधन (आभूषण) को शीघ्र ला। मैं उसे तथागत की रथी पर चढ़ाना चाहती हूँ। अपने धर्म-पिता की पूजा के लिए मेरे पास अब और क्या शेष रह गया है?'

भगवान् की रथी जब मल्लिका के घर के पास पहुँची, तब उसने श्रद्धापूर्वक भगवान् के शरीर पर अपने महालता प्रसाधन को सिर से पैर तक ओढ़ा दिया। स्वर्ण-वर्ण बुद्ध-शरीर सात रत्नों से जटिल महालता प्रसाधन से आभूषित हो अत्यन्त शोभायमान हो गया। उसे देखकर प्रसन्न हो मल्लिका ने प्रार्थना की—'भगवान्! जब तक मैं जीवन्मुक्त न होऊँ, तब तक मुझे आभूषणों की आवश्यकता न हो, मेरा शरीर ही नित्य पहने हुए प्रसाधन के समान हो।'

वह मल्ल-वधू मल्लिका भी बहुत दिनों तक जीवित न रह सकी, किन्तु उसके त्याग की कहानी आज भी अमर है। अब भी कुशीनारा की बुद्ध-परिनिर्वाण-मूर्ति के पार्श्व-भाग में काले-रंग के पत्थर में आला खोदकर बनाई हुई मल्लिका की मूर्ति विद्यमान है, जिसमें वह अपने स्निग्ध-श्याम केशों को फैलाकर हाथों को झुकाये शोकार्त बैठी है।

●

चुन्द

(ईसवी पूर्व छठीं शताब्दी)

पावा का आवसथागार (अतिथिशाला) भली भाँति सजा दिया गया था। आसन बिछा दिये गये थे। पानी के मटके और कसोरे रख दिये गये थे। तेल-प्रदीप की सुन्दर व्यवस्था कर दी गयी थी। धर्मचक्र-चिह्नांकित ध्वज उसके ऊपर फहरा रहा था। जातिवन महाविहार भी आज अलंकृत कर दिया गया था। नैवासिक भिक्षुओं ने जन्ताघर (स्नानागार) और वच्चकुटी (शौचालय) को स्वच्छ कर यथास्थान उदकमणिकाओं को रख दिया था। स्नानीय एवं पेय जल बड़े-बड़े मटकों में पर्याप्त मात्रा में रख दिये गये थे। गन्धकुटी में बुद्धासन लगा दिया गया था। पुष्पों की राशि भी पहले से ही गन्धकुटी को सुवासित कर रही थी। उसमें पूर्व ओर सिरहाना करके मञ्च बिछा दिया गया था। पादपुंछन मञ्च के सामने रख दिया गया था। हस्तपुंछन कपिशीष (खूंटी) पर लटका दिया गया था। भिक्षु भगवान् के स्वागत के लिए पूर्णरूप से प्रस्तुत थे। नगरवासी भी अपने घर-द्वार को स्वच्छ कर लिये थे और शास्ता एवं भिक्षुसंघ के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। आज पावा के तैर्थिक भी बुद्ध-दर्शन के लिए व्यग्र थे। तीन वर्ष पूर्व निगंठ नाथपुत्र का देहावसान इसी पावा में हुआ था। उनके शिष्य उन्हें राजगृह से रुग्णावस्था में लाये थे। उस समय लोगों को ज्ञात नहीं था कि वे एक

गणाचार्य थे, त्रिकाय-शुद्धि के प्रवक्ता थे। जब उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके शिष्यों में उत्तराधिकार का झगड़ा उठ खड़ा हुआ था, तब पावावासियों को उनके व्यक्तित्व का ज्ञान हुआ था। यद्यपि भगवान् बुद्ध का अधिकांश पावावासियों ने दर्शन किया था। उनका अनेक बार पावा में आगमन हुआ था। कभी संस्थागार (संसद-भवन) में, कभी जातिवन महाविहार में और कभी आवसथागार में उन्होंने विहार किया था। अब तो कुछ वर्षों से गंधकुटी ही उनके आगमन के समय स्थायी निवासस्थान थी, जो जातिवन महाविहार में चुंद कर्मारपुत्र द्वारा बनवायी गयी थी। यह महाविहार भी चुन्द के ही आम्रवन में था। चुन्द ने इसका निर्माण कर बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को दान कर दिया था। पावा के मल्ल, नगरश्रेष्ठि चुन्द कर्मारपुत्र तथा तैर्थिक——सभी तथागत के दर्शन के लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई भी इस शुभावसर को चूकना नहीं चाहता था।

सूर्यास्त होते ही भगवान् पाँच सौ भिक्षुओं के महान् संघ के साथ पावा पहुँचे थे। गंधकुटी में भगवान् ठहरे। कुछ भिक्षुओं के ठहरने की व्यवस्था आवसथागार में भी की गयी। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी थी। रात्रि में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से ही सारा विहार प्रकाशित था। शास्ता गंधकुटी के अलिन्द में बिछे आसन पर विराजमान हुए। चुंद कर्मारपुत्र अपने परिवार सहित भगवान् के पास आया और पञ्चाङ्ग प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। भगवान् ने उसे दान, शील और भावना का उपदेश दिया। चुन्द ने गद्गद् होकर भगवान् के प्रवचन का अनुमोदन किया और दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना

कहा — भन्ते ! कल भिक्षुसंघ के साथ मेरा भोजन स्वीकार करें। भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार कर लिया।

चुन्द ने तीन मास पूर्व जब सुना था कि शास्ता वैशाली में रोगशय्या पर पड़े हैं, भिक्षुसंघ उनके स्वास्थ्य के लिए चिन्तित है, तब वह स्वयं महावैद्य जीवक कौमारभृत्य के पास गया था। और उससे ऐसी औषध की जानकारी प्राप्त की थी कि जिसे खा लेने से भगवान् का गिरता हुआ स्वास्थ्य ठीक हो सकता था। उसने पूर्व योजना के अनुसार वाराही कन्द के योग से सुकर मार्दव (सुकरमद्दव) तैयार कराया और दूसरे दिन मध्याह्न में भोजन के समय उसे ही भगवान् को परोसा। देवताओं ने उसमें दिव्य ओज डाल दिया, क्योंकि तथागत का यह अन्तिम भोजन था। उन्हें अन्तिम भोजन करा सभी पुण्य-लाभ करना चाहते थे।

शास्ता ने भिक्षुसंघ के साथ चुन्द के यहाँ भोजन ग्रहण किया। शेष सुकरमार्दव तथागत के आदेश से गड्ढे में गाड़ दिया गया। दानानुमोदन के पश्चात् वैशाख पूर्णिमा के दिन अपराह्न में उन्होंने कुशीनगर के लिए प्रस्थान कर दिया।

(२)

संस्थागार में सभी सदस्य उपस्थित थे। सुदत्त मल्ल गणाध्यक्ष के आसन पर विराजमान था। उसका आसन गण-सन्निपात के पश्चिम ओर पूर्वमुख था। अन्य सदस्य पश्चिममुख उसे ही सामने कर बैठे थे। नगरश्रेष्ठि चुन्द का आसन सुदत्त के पास किंचित् नीचे और सदस्यों के आसनों से ऊपर सबके सामने था। द्वार पर धनुर्धारी पुरुष खड़े शान्ति एवं

सुरक्षा के लिए प्रस्तुत थे। संस्थागार की पहली घण्टी बजी। सभी शान्त हो गये। कुक्कुट उपासक अपनी श्वेत शाल्मलीय उपरनी को बायें कन्धे पर करके उठा और गणाध्यक्ष को प्रणाम कर बोला——

'भन्ते गण ! मेरी सुनें। हमने चुन्द कर्मारपुत्र को नगर-श्रेष्ठि का पद दिया। इनका सम्मान किया। उन्होंने भी जातिवन में विहार बनवाया। अनेक कूप खोदवाये। स्वर्णगर्भा एवं ककुत्था पर सेतु बँधवाये। इनका घर भिक्षुओं के लिए दान-शाला है। भिक्षुओं को औषध, चीवर, परिष्कार और शयनासन सभी श्रमणसारुप्य वस्तुएँ इनसे प्राप्त होती हैं। आर्यसंघ इन पर अतीव प्रसन्न है। शास्ता के आने पर इन्होंने सभी भिक्षुओं को स्वर्ण-भाजनों में भोजन परोसा था। इन्होंने हमारे नगर का ही नहीं, हमारे धर्म का भी यश बढ़ाया है। इनके धर्म-कार्यों की सर्वत्र चर्चा है। किन्तु भन्ते गण ! चुंद जैसे उदार एवं धार्मिक उपासक के विरुद्ध एक बात सुनी गयी है। में उसका स्पष्टीकरण चाहता हूँ।'

'चुंद ढोंगी है, नीच है। वैशाली में अम्बपाली गणिका ने लिच्छवी राजाओं से पूर्व ही भगवान् को भोजन के लिए निमन्त्रित कर दिया था और इसने हम मल्ल राजाओं के तथागत के पास जाने से पूर्व ही उनसे स्वीकृति ले ली थी। और, जानते हैं क्या किया इस वंचक ने ? शास्ता को भोजन के साथ किसी तीव्र विष को खिला दिया था। शास्ता ने इसीलिए शेष भोजन को अन्य किसी को नहीं खाने दिया, उसे गड्ढे में गड़वा दिया था।' साल्ह ने आवेश में कहा।

'पावा से कुशीनारा केवल तीन ही गव्यूति दूर है। भगवान् को इतनी ही दूरी में पचीस बार विश्राम करना पड़ा था। बार-बार पानी पीना पड़ा था और रक्तातिसार की पीड़ा से उनका शरीर शिथिल हो गया था। विष के प्रभाव से शास्ता अत्यन्त क्लान्त हो गये थे। कुशीनारा में पहुँचते ही उन महामुनि का धर्म-काय सदा के लिए सो गया था।' उपासक निकट ने वेदनापूर्ण स्वर में आँसू गिराते हुए कहा।

'ऐसे व्यक्ति को हम अपना नगरश्रेष्ठि नहीं रख सकते, हम उसे अपने गणतंत्र में भी नहीं देख सकते, जिसने हमारे शास्ता के प्रति दुराचार किया हो। यह साक्षात् हमारी श्रद्धा पर ठोकर मारना है। मुझे चुंद से ऐसी आशा न थी। मैं अपने कानों से यह सब क्या सुन रहा हूँ। भन्ते गण! इसकी निष्पक्ष जाँच होनी चाहिये और गड्ढे में गड़े तथागत के उच्छिष्ट भोजन की परीक्षा करनी चाहिए।' कुक्कुट ने व्यग्रता-पूर्वक कहा।

दूसरी घण्टी बजी। सब सदस्य गणाध्यक्ष्य की ओर देखने लगे। सुदत्त ने चुंद की ओर संकेत कर कहा—'गण! मेरी सुने। अब मैं इस सम्बन्ध में मत जानने के लिए छन्द-शलाका बाँटने से पूर्व चुन्द की बातों को भी सुनना चाहता हूँ। आवुस चुंद! इस सम्बन्ध में आपका क्या कथन है?'

'भन्ते गण! आप मेरी भी सुनें। आयुष्मान् सुदत्त की आज्ञा हुई है कि मैं अपनी बात भी गण के समक्ष प्रस्तुत करूँ। उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार है। भन्ते! मेरा सभी अपराध क्षमा हो। आप सर्वज्ञ ही मेरे शास्ता थे। आपने

महापरिनिर्वाण प्राप्त कर लिया । सुगत ! आपको इस उपासक का अभिवादन स्वीकार हो । आप सर्वदर्शी थे । आप मेरे दोषों को अवश्य क्षमा कर देंगे । अब आपके अतिरिक्त दूसरा कौन इसे स्पष्ट कर सकता है । मैं आपकी शरण हूँ । त्रिरत्न के आनुभाव से सबका कल्याण हो । सभी प्राणी बहुजन हिताय बहुजन सुखाय आचरण करें । भन्ते गण ! यदि मुझे अपने शास्ता को भोजन देने के अपराध में मृत्युदण्ड भी दे दिया जाय तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हूँ । गण को मेरे इस कथन या आचरण से यदि कुछ कष्ट पहुँचा हो तो उसे क्षमा किया जाय । अब मुझे अधिक कुछ कहना नहीं है ।' चुंद ने विनम्रतापूर्वक कहकर आसन ग्रहण किया ।

तीसरी घण्टी बजी और फिर गण को सम्बोधित कर सुदत्त ने कहना प्रारम्भ किया—'गण ! सुनें । चुंद हमारे जनपद के रत्न हैं । इन्हें मार्गफल (ज्ञान) प्राप्त है । हमारे मित्रों ने उनके विरुद्ध भावातिरेक में जो कुछ कह डाला है, उसके लिए मैं सबकी ओर से आवुस चुन्द से क्षमा माँगता हूँ । उन्होंने तथागत के प्रति श्रद्धाधिक्य के ही कारण ऐसा कहा है, किसी वैमनस्य से नहीं । मैंने उन्हें रोका भी नहीं, क्योंकि महाभाग चुन्द के गुणों को भी गण के समक्ष प्रकट करना चाहता था और बुद्ध-सन्देश को भी गण को सुनाना चाहता था । हम क्या इन पर दोष लगायेंगे ? कल ही सायंकाल कुशीनारा से भदन्त रेवत आयुष्मान् आनन्द का सन्देश लेकर आये । उन्होंने बतलाया कि शास्ता ने ककुत्था के तीर आम्रवन में उनसे कहा था कि चुन्द तक यह सन्देश पहुँचा दिया जाय कि 'आवुस चुन्द ! लाभ है

तुझे, तूने सुलाभ कमाया, जो कि तथागत तेरे पिण्डपात को खाकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। सुजाता और चुंद दोनों के पिण्डपात समान फलदायी और गुणकारी हैं। चुंद कर्मारपुत्र ने आयु प्राप्त करानेवाले कर्म को सञ्चित किया। वर्ण, सुख, यश और आधिपत्य को प्राप्त करानेवाले कर्म को सञ्चित किया।' ऐसे बुद्ध-प्रशंसित आवुस चुंद से हम क्षमा चाहते हैं। आपका आशीर्वाद हमारे गणतंत्र पर बना रहे। तथागत! हमारे इस दुष्कर्म के लिए हमें क्षमा करेंगे। हम आपके शरणागत अनुगामी हैं। गण को चाहिये कि कुशीनारा के मल्लों से तथागत की अस्थियों को प्राप्त करने का प्रयास करे और उसे निधान कर जातिवन महाविहार के निकट ही आम्रवन में एक सुन्दर विशाल स्तूप का निर्माण करे। इस निर्माणकार्य में हमें आवुस चुंद का सहयोग पूर्णरूपेण अपेक्षित है।'

'साधु! साधु!! साधु!!!' के तुमुल घोष से संस्थागार गूँज उठा।

(३)

पावा के मल्लों को भी तथागत की अस्थियों का एक भाग प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वर्णमंजूषा में उन्हें रखकर जुलूस के साथ नगर की प्रदक्षिणा करायी और निर्धारित स्थान पर ले जाकर एक सुसज्जित आसन पर पुष्पराशि के बीच रखा। स्तूप का निर्माण प्रारम्भ हो गया। जब से अस्थियाँ आयीं, पावा के नर-नारी सायं-प्रातः पूजा के निमित्त पुष्प, धूप, दीप, चंदन आदि लेकर वहाँ आने लगे। चुंद ने तो अपना सारा धन और जीवन अस्थियों के लिए ही अर्पित कर दिया। उसे ऐसा लगता,

जैसे कि साक्षात् शास्ता ही उसके आम्रवन में विराजमान हों। उसने स्तूप की ईंटों को स्वयं देख-देखकर चुनवाया। स्थपितों के चले जाने पर रात भर वहीं बैठकर ध्यान-भावना में संलग्न रहता और चंक्रमण करते हुए बुद्धगुणगान करता। उसकी पुत्री सुभागा, पुत्र नागित, पुत्रवधू नंदा एवं पत्नी शीलवती गृहत्याग कर भिक्षु-भिक्षुणी बन गये; किन्तु चुंद भिक्षु नहीं बना। उसने अपने जीवन का एकमात्र परम उद्देश्य माना था तथागत के स्मारक-स्वरूप धातु-स्तूप का निर्माण।

सात मास के भीतर ही पावा का वह भव्य स्तूप बनकर तैयार हो गया। उसकी ऊँचाई ५० पोरसा थी। ईंटों की जोड़ाई के ऊपर सुधा का आलेप लगा था और चारों ओर पुष्पाधान बने थे। पास में पूर्व ओर एक दानशाला भी बनी थी। चुंद वर्षा में दानशाला में आ जाता और कड़ी धूप में स्तूप की छाया में। दोपहर में भोजन करने के लिए ही दानशाला में आता और शेष समय में स्तूप की प्रदक्षिणा करता, पूजा करता, धूप, दीप जलाता तथा सूत्रपाठ करता था। वह गृहस्थ वेश में होते हुए भी एकाहारी था। भिक्षु न होते हुए भी आध्यात्मिक गुणों का धनी था। भिक्षु-भिक्षुणियों का पूजक था और था परम सौगत।

देखते-देखते वैशाख पूर्णिमा आ गयी। नगर में उत्सव का आयोजन था। स्तूप और विहार उपासक-उपासिकाओं से भरे थे। संघ-स्थविर का प्रवचन हो रहा था। चुंद ने भी प्रवचन सुना और संघ को प्रणाम कर स्तूप की ओर गया। उसके जाने के बाद कुछ उपासक-उपासिका भी पूजा के हेतु उधर गये।

उन्होंने देखा कि चुंद हाथ जोड़े स्तूप को अभिवादन कर रहा था। पलथी मारे था और उसका पूरा शरीर पोरसा भर ऊपर आकाश में पूजा करते-करते ही उठ गया था। थोड़ी ही देर में यह बात पूरे नगर में फैल गयी। सारा नगर समुद्र की भाँति स्तूप की ओर उमड़ चला। लोगों ने देखा कि चुंद के शरीर से आग की लपट निकली और चारों ओर से पूरे शरीर को उसने एकाबद्ध कर लिया। आकाश में बैठे ही चुंद का पार्थिव काय जलकर भस्म हो गया, केवल अस्थियाँ ही शेष रहीं।

(४)

चुंद कर्मारपुत्र का परिनिर्वाण भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के ठीक दूसरे ही वर्ष हुआ था और पावा के मल्लों ने उसकी अस्थियों पर भी एक स्तूप का निर्माण किया था। चुंद की गुण-गाथा पालिग्रंथों में आज भी सुरक्षित है। चुंद द्वारा निर्मित बुद्ध-स्तूप भी देवरिया जिले के फाजिलनगर ग्राम (वर्तमान पावा-नगर) में ध्वंसित रूप में पड़ा है और चुंद का स्मारक-स्तूप भी वहीं कहीं भूमि के नीचे दबा भविष्य की प्रतीक्षा कर रहा है।

सार्थवाह

(ईसवी पूर्व पाँचवीं शताब्दी)

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन वर्षों के पश्चात् ही अजातशत्रु ने वज्जी देश पर अधिकार कर लिया और लिच्छवियों का शक्तिशाली गणतंत्र मगध का एक अंग बन गया। पश्चिम में कोशल-नरेश प्रसेनजित् के विद्रोही पुत्र विडूडभ ने बिना किसी क्रांति के ही कोशल पर अधिकार कर लिया। उसी पितृ-वंचक ने शाक्यों एवं कोलियों की स्वतंत्रता भी हड़प ली। इन दोनों राजतंत्रों की बढ़ती हुई शक्तियों के बीच पिप्पलीवन के मौर्य, अल्लकप्प के बुली और पावा एवं कुशीनारा के मल्ल भी पिस गये। अपने गणतंत्र पर अभिमान करने वाले व्यवसायी राजा मल्लों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। अब उनके सार्थ पूर्व की भाँति संगठित एवं शक्ति सम्पन्न न रहे। मल्लों की राजधानियाँ उजड़-सी गईं और इनकी शोभा क्षीण पड़ गई। फिर भी, मल्लों की कुल-परम्परायें, व्यवसाय, कृषि-कर्म, त्यौहार आदि क्रियाओं में पहले के समान ही उत्साह विद्यमान था। ये सारी बातें मल्लों की अपनी जाति, धर्म एवं वंश की मर्यादा बन गई थीं। इन्हें करने में मल्लों को गौरव का अनुभव होता था।

आज ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा थी। सम्पूर्ण मल्ल देश में बीज बोने का उत्सव (वप्पमङ्गल दिवस) मनाया जा रहा था। कुशीनारा के सभी मल्ल अपने बैलों को पंचांगुलों से चित्रित

किये थे। उनकी सींगों में स्वर्ण-रजत के आभूषण पहनाये थे। गले में टुन-टुन करती सुन्दर घंटियाँ शोभित थीं। पीठों पर जड़ाऊ एवं आलेखन-युक्त चादरें लटक रही थीं। कुछ बैल पीले रंग से रँगे गए थे, कुछ लाल रंग से तथा कुछ श्वेत, हरे और गुलाबी रंग से। उन पर भिन्न रंग के पंचांगुल लगे थे। हल के हरीष एवं जुआठ भी विभिन्न रंगों से रँगे तथा चित्रित किए गए थे। जोत की रस्सियाँ भी रंगीन लगी थीं। सभी मल्ल तरुण, वृद्ध एवं बच्चे नये वस्त्रों से सिली चौबंदी पहने थे। सिर पर रंगीन पगड़ी थी। धोती, पगड़ी एवं चौबंदी के रंग समान थे। वे भी हरे, पीले, श्वेत, लाल एवं गुलाबी रंग में रँगे थे। श्रेष्ठि एवं प्रभुवर्ग की पगड़ी में शाल के पल्लव लगे थे। उनकी यही पहचान थी। महिलायें भी अप्सराओं की भाँति अलंकृत थीं। नये वस्त्रालंकारों से उनके शरीर का गठन और भी निखर आया था। सभी घरों में विभिन्न प्रकार के पकवान एवं खाद्य-भोज्य की सामग्रियाँ तैयार की जा रही थीं। महापरिनिर्वाण विहार, मुकुटबंधन एवं आर्य संघाराम के सभी भिक्षु मध्याह्न में भोजन के लिए निमंत्रित थे। कुछ घर ऐसे भी थे जिन्हें आज भिक्षु मिले ही नहीं थे। उन्होंने भिक्षुओं को परिष्कार-पूजा करने का निश्चय किया था। परिष्कार-पूजा जब भी की जा सकती थी। मल्लों के घर भी लिपे-पुते थे। उन पर बोधिवृक्ष, स्तूप, त्रिरतन, धर्मचक्र, स्वस्तिक और वज्रासन के चित्र बने थे। कुछ घरों पर शुक, सारिका, हंस, मयूर आदि के भी चित्र बने थे और यही उनकी पहिचान थी कि वे सौगत नहीं थे। किन्तु ऐसे घरों की संख्या कुशीनारा में नगण्य थी।

सूर्य के कुछ चढ़ते ही सभी मल्ल अपने बैलों एवं हलों के साथ खेतों में जा पहुँचे। हलों की मुठिया पकड़ते ही कुबेर भण्डारी (उत्तर दिशा के स्वामी) की जयकार बोली गई। प्रत्येक मल्ल गृहस्वामी ही हल की मूठ पकड़ा था और बच्चे तथा तरुण अथवा घर के अन्य लोग पीछे से बीज डालते जाते थे। महिलायें भी बीज डाल सकती थीं, किन्तु मल्ल इसे अपनी कुल-मर्यादा के विरुद्ध मानते थे, अतः कुछ अभाव-ग्रस्त घरों की महिलायें ही खेतों में दिखाई पड़ती थीं। आज के दिन हल चलाना सभी वाशिष्टवंशी मल्ल अपना परम्परागत कुल-धर्म मानते थे। राजा से लेकर साधारण परिवार तक के मल्ल को इस दिन हल चलाना पड़ता था।

सिर पर सूर्य के आते ही बैल छोड़ दिये गये। खेतों पर मिठाइयाँ बाँटी गयीं और गीत गाते लोग घरों की ओर लौट पड़े, जहाँ गृह-स्वामिनियाँ उनके स्वागत के लिए प्रस्तुत थीं। उस समय तक पंक्तिबद्ध भिक्षुओं की टोलियाँ भी नगर में दान ग्रहण करने के लिए आ गई थीं। भिक्षुओं के आने पर प्रत्येक घर के सामने बाजे बजने लगे थे। ढाक, तासा एवं नगाड़ों के शब्दों से नगर वाद्यमय हो गया था। भिक्षुओं के पैर शीतल जल से धोए गए और उन्हें श्रद्धापूर्वक घरों में बिछे आसनों पर बैठाकर भोजन कराया गया। संघ-स्थविर या ज्येष्ठ भिक्षु के दानानुमोदन हुए और वे अपने विहारों एवं संघारामों को लौट गये।

सायंकाल नृत्य का आयोजन था। मल्ल-ललनायें घरों में नाचती एवं गीत गाती थीं। बाहर नृत्यशाला में पुरुषों के नृत्य

का आयोजन था। मल्लों की नाटयशाला 'रसवन्ती' में वेस्सन्तर नाटक हो रहा था। इसमें महिलाओं एवं पुरुषों के बैठने का सुन्दर प्रबन्ध था।

अर्द्धरात्रि में विक्रेय भाण्डों से सज्जित पाँच सौ शकटों का सार्थ कुशीनारा से निकल पड़ा। राजकुमार सुबाहु सार्थवाह था। सार्थ के पास मल्लदेशीय क्षौम, आकीय, एवं पाटव वस्त्र थे। पर्वतीय चन्दन, देवदारु, मणि-माणिक्य, वस्त्र, धारणीय तथा शंख थे। वाराणसेय हेमखचित वस्त्र, काशिकेय चन्दन, मागधीय क्रीडा-सामग्री, जटा-जूट, आभूषण, मनके और शिरोत्राण थे। वज्जियों के अस्त्र-शस्त्र, चर्म-कलाकृतियाँ एवं रंग-बिरंगे कौषेय वस्त्र थे। यह सार्थ श्रावस्ती का मार्ग पकड़ा और इसे मद्रदेश की राजधानी सागल से होकर गान्धार की राजधानी तक्षशिला तक जाना था तथा उन प्रदेशों से बहुमूल्य वस्तुएँ लानी थीं। रात्रि में चलते हुए सार्थ के सबसे आगे और सबसे पीछे वाले शकट की घंटियाँ बजती रहती थीं। राजकुमार सुबाहु पिछले शकट पर बैठा सार्थ की सुरक्षा के लिए सतर्क था।

(२)

"मैं यह जानना चाहता हूँ कि हमारा सार्थ क्यों रोका गया है? हम मल्ल सदा से व्यवसायी राजा रहे हैं। हमारे गणतंत्र का प्रत्येक मल्ल राजा एवं वणिक् रहा है। राजा होने के दिनों में वह शासन-सूत्र सम्हालता रहा है और अन्य दिनों में सार्थ के साथ व्यापार करता रहा है। आपके राज्य में हमारे सार्थ निष्कंटक घूमते रहे हैं। हमारे पूर्वज वीर बन्धुल मल्ल एवं आपके पिता में घनिष्ठ मित्रता थी और इसीलिए मल्लों ने

अपने वीर को कोसल के लिए अर्पित कर दिया था। हमारी मैत्री पैतृक है। आपके राज्य में हमें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए। हम आपके हितैषी हैं।'' राजकुमार सुबाहु ने विनम्र शब्दों में कहा।

''सार्थवाह! तुम अब राजा नहीं रहे और न तुम्हारा गणतंत्र ही रहा। तुम अजातशत्रु की प्रजा हो। तुम मगध की सम्पत्ति हो और मुझे मगध की राज्यलक्ष्मी को लूटने में आनन्द आता है। जानते हो, उस अजातशत्रु ने मेरे पिता के जीवित रहते काशी के लिए कितने भयंकर युद्ध किये थे। अन्तिम युद्धों में मुझे स्वयं उससे लड़ना पड़ा था। कौन जाने तुम लोग भी उसके गुप्तचर हो या सार्थ के साथ अस्त्र-शस्त्र लेकर चलते हुए मेरे राज्य में विद्रोह की ज्वाला भड़का दो। बन्धुल को तो तुम लोगों ने भगा दिया था। वह मल्लों द्वारा अपमानित होकर ही श्रावस्ती का शरणागत हुआ था।'' विडूडभ ने घृणा के भाव से मुस्कराते हुए कहा।

''राजन्! हम राजा नहीं रहे। हमारा गणतंत्र मगध के अत्याचारी नरेश द्वारा नष्ट कर दिया गया। किन्तु हम तो व्यापारी हैं। व्यवसाय करने के लिए निकले हैं। हम भी राजवंश के ही हैं। हमें अब भी राजकुमार कहा जाता है। किन्तु हम अपने को वणिक् राजकुमार कहने में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। राजन्! मगध-नरेश तो आपके फुफेरे भाई हैं। उन्होंने अपने पिता का वध करके राज्य प्राप्त किया और बज्जी, मल्ल तथा पिप्पलीवन के गणतंत्रों को हड़प लिया। आपने अपने पिता के राज्य पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया।

बेचारे महाराज अन्न जल के लिए तड़पते हुए दिवंगत हो गए और आपने भी शाक्य तथा कोलिय गणतंत्रों को जनशून्य कर दिया। हम दोनों में कोई अन्तर नहीं समझते। दोनों समान हैं। दोनों अन्यायी हैं।'' सुबाहु ने आवेश में कहा।

''हाँ, हाँ, कहते जाओ, जब तक कि तुम्हारा सिर धड़ से अलग नहीं कर दिया जाता।'' विड़ूडभ ने क्रोध से कहा।

''मगध-नरेश ने हमारा गणतंत्र ले लिया। आपने हमारे सार्थ को अपने अधिकार में कर लिया। अब केवल हम थोड़े से मल्ल शेष हैं। हमें शीघ्र समाप्त कर दें जिससे कि मल्लों का राजवंश सदा के लिए समाप्त हो जाय और आप लोग निर्भय होकर अत्याचार करें। हम तो सदा से ही अपनी सम्पत्ति लुटाने वाले हैं। तथागत की पवित्र अस्थियों तक को बाँट दिया, किन्तु अन्य कोई भी अपने ग्राम-क्षेत्र में प्राप्त धन को दूसरों में बाँटने नहीं जाता। यह हमारा परम आदर्श है राजन्! आप सहर्ष हमें मार सकते हैं। आप राजा हैं और इतने विस्तृत कोसल देश के महाराजा; किन्तु हम अभागे अपने खोये हुए गणतंत्र के अभिमानी केवल राजन्य ठहरे!''

''तुम्हें उपदेश भी देना आता है। राजनीति की भी शिक्षा पाई है तूने!'' विड़ूडभ ने व्यंगपूर्वक कहा।

''हाँ, हमें उपदेश भी देना आता है। हमारे ही पूर्वज सार्थवाहों ने भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध के पवित्र उपदेशों को गान्धार, कम्बोज, यौधेय, अवन्ति, सूनापरान्त आदि जनपदों तक पहुँचाया था। हम सन्देश-वाहक एवं धर्मदूत के रूप में भी व्यापार करते फिरते हैं। सार्थवाहों की प्रशंसा स्वयं भगवान् ने भी की थी।

राजा पुक्कुसाति ने सार्थवाहों से ही बुद्धवचन सुना था और राजपाट त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। चण्डप्रद्योत की नगरी उज्जयिनी सार्थों से ही त्रिरत्न के प्रभाव में आई थी। स्वयं आपके पिता को भी सर्वप्रथम सार्थों से ही बुद्धगुण ज्ञात हुए थे। श्रावस्ती के दानवीर श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक ने भी सार्थ के साथ ही राजगृह जाने पर तथागत का दर्शन किया था। राजगृह में उसका सम्बन्ध भी सार्थ के ही कारण हुआ था। सौरेय्य स्थविर का कल्याण भी हम सार्थवाहों ने ही किया था। राजन्! हम सार्थवाह सफल उपदेशक हैं और राजनीति के ज्ञाता भी, किन्तु आपके राज्य में हमें कोई षड्यंत्र नहीं करना है। हम पूर्व-मैत्री सम्बन्धों को नहीं बिगाड़ सकते। और आपको उपदेश देने के लिए तो जेतवन महाविहारवासी भिक्षु-संघ ही पर्याप्त है।"

(३)

"कुमार! जिस दिन मैंने तुम्हारे धर्म-रस-भरे वचनों को सुना था, जब तुमने मेरे पिताजी के साथ बुद्ध-सन्देशों की चर्चा की थी, तभी मेरा मन तुम्हारी ओर आकर्षित हो गया था। तुमने ध्यान दिया होगा, मैं पिताजी के पार्श्व में मंच पर बैठी बार-बार तुम्हारा ही मुख निहार रही थी।" सुजा ने सुबाहु के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा।

"और उसी रात्रि को तुम बन्धनागार में मिली भी थी न! मैंने तो समझ लिया था कि मैं दूसरे दिन प्रातः ही शूली पर चढ़ा दिया जाऊँगा।"

"हाँ, यह तो निश्चित ही था, किन्तु मैंने पिताजी के पास जाकर उसी रात्रि में रोना-धोना प्रारम्भ कर दिया और उनसे

तुम्हें माँग लिया ! पहले तो उन्होंने बहुत डाँटा, किन्तु मां रंजना देवी के समझाने पर मान गये। मेरी फुआ मगध नरेश की पत्नी वजिरा महारानी ने भी मेरा पक्ष लिया और कहा कि यह वीर हम सबका हितैषी है। राजकुमार है। सुन्दर है। कुलीन है। मैं सौभाग्यवती थी जो कि तुम सार्थवाह के रूप में श्रावस्ती पहुँचे और पिता जी ने सन्देहवश तुम्हें बन्धनागार का अतिथि बना लिया।''

''हाँ, सुजे ! मेरा भी भाग्य उस दिन जाग उठा था, जो कि तुम्हारी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तुमने मुझे अपना लिया। उस रात्रि का तुम्हारा बन्धनागार में आना और स्नेहपूर्ण बातों से स्वागत करना मुझे सदा ही स्मरण हो आता है।''

''और, मुक्त होकर कोशल नरेश द्वारा मेरा हाथ पकड़वाने तथा मंगलसूत्र से बाँधने की बात नहीं याद आती ?''

''याद आती है प्रिये ! मेरे जिस सार्थ को तुम्हारे पिता ने रोकवा दिया था, उसे तो धन-धान्य से पूर्ण किया ही, साथ ही दहेज में और भी पाँच सौ शकटों पर बहुमूल्य वस्तुएँ हम लोगों को अर्पित की थीं। हमारे सार्थ के साठ कुमारों के भी विवाह का आयोजन कर एक ऐतिहासिक कार्य कर दिया कोसल नरेश ने। अब तो श्रावस्ती मेरी ससुराल है और कुशीनारा कोसल नरेश का जामाता-गृह है।'' सुबाहु ने हँसते हुए सुजा के सिर पर हाथ फेरते कहा।

''हाँ, स्वामी ! मल्ल, शाक्य, कोलिय, एवं कोसल राजवंश एक ही क्षत्रिय वंश-परम्परा के हैं। इनमें सदा ही मैत्री बनी

रहनी चाहिए और मल्लों तथा कोसलों का सम्बन्ध तो अब राज्यशक्ति से भी बढ़कर रक्त का हो गया।"

"सुजे ! हमारा यह सम्बन्ध दृढ़ रहे। कुशीनारा एवं श्रावस्ती-साकेत फूलते-फूलते रहें।"

(४)

राजकुमार सुबाहु एवं राजकुमारी सुजा कब तक जीवित रहे और इनका अन्त कैसे हुआ, इसे कोई नहीं जानता, किन्तु मल्ल जनपद के सार्थवाह सदा व्यापार हेतु सुदूर देशों तक जाते रहे। आज भी देवरिया और गोरखपुर जिलों के व्यापारी-गाड़ीवान, चम्पारन, नेपाल तथा मधेश (मध्यदेश) एवं बाजी (वज्जी) इलाकों में घूम-घूम कर व्यापार करते हैं। इन जिलों से चावल, वस्त्र, चीनी एवं बिसाता के सामान आज भी काली गंडकी के तीर पहुँचते हैं और वहाँ नमक, ऊन, शंख आदि से उनका विनिमय होता है। मल्ल जनपद के उस सार्थवाह की ही भाँति आज भी अन्तरप्रान्तीय एवं अन्तरदेशीय विवाह हुआ करते हैं। आज भी सार्थवाह सुबाहु एवं राजकुमारी सुजा की विवाह-कथा को इन प्रदेशों की मातायें अपने बच्चों सुनाया करती हैं।

●

उत्तरा

(ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दी)

सम्पूर्ण नगर में शान्ति व्याप्त थी। किसी को भी विरोध करने का साहस नहीं हो रहा था। सभी मौन धारण कर अपने घरों में चिन्तित बैठे थे। राजाज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता था? किसमें इतनी शक्ति थी, जो अमात्यों के दुष्कर्मों का विरोध करता। पावा नगर मानो शोकार्त्त हो अपने दुर्दिन पर रो रहा था। वहाँ का गौरव-चिह्न एवं पूजा-स्थान महान स्तूप तोड़ा जा रहा था। अशोक की आज्ञा थी कि बुद्ध-अस्थियों पर निर्मित जम्बूद्वीप के सारे स्तूपों को तोड़कर उनसे अस्थियाँ ले ली जाएँ। उनमें किंचित् मात्र ही अस्थियाँ छोड़ी जाएँ। वे सभी अस्थियाँ पाटलिपुत्र लाई जाएँ। उन्हें निधान कर सारे देश में चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण किया जाएगा। जहाँ तक चौरासी हजार स्तूपों के निर्माण की बात थी, उससे तो सब प्रसन्न थे किन्तु वे यह नहीं चाहते थे कि उनका पवित्र स्तूप तोड़ा जाए और उसमें सुरक्षित तथागत की अस्थियाँ राजशक्ति द्वारा उनकी सहमति के बिना ही ले ली जाएँ।

"पुत्री उत्तरे! आज तुम क्यों उदास हो? क्या माँ का स्मरण हो आया है?" जयसिंह ने प्रेम से अपनी इकलौती षोडशी कन्या के पास जाकर बैठते हुए पूछा।

"नहीं, पिताजी ! माँ का स्मरण नहीं हो आया है। माँ तो आज तुषितलोक में धर्म कर रही होंगी। पिताजी ! आप नहीं जानते कि भगवान् का स्तूप तोड़ा जा रहा है ? कितना महान पाप हो रहा है ! अशोक——नीच अशोक सम्राट बना है। अपने भाइयों की हत्या कर, लाखों व्यक्तियों का कलिंगयुद्ध में वध कर अब धार्मिक होने का ढोंग रच रहा है ! अपने को बौद्ध कहता है और वह ढोंगी भगवान् के स्तूप को तुड़वाकर अस्थियों को हमसे छीनने का उपक्रम कर रहा है। आज मैं जब पूजा करने गई, तब स्तूप का तोड़ा जाना देखकर मुझसे वहाँ नहीं रहा गया। पुष्पों को पुष्पासन पर चढ़ाकर शीघ्र घर चली आई। मुझे तो तनिक भी अच्छा नहीं लग रहा है मानो मेरा हृदय फटा जा रहा हो।" उद्विग्न होकर उत्तरा ने कहा।

"पुत्री ! हम अशोक की प्रजा हैं। वह हमारा शासक है। हम कर ही क्या सकते हैं ? कभी हम भी शक्तिशाली थे। पावा में ही हमारे पूर्वजों का संस्थागार था। यहीं हमारा गणतंत्र था। हम मल्ल-जनपद के शासक थे। यह सुवर्णा उस समय भी ऐसे ही गतिमान थी। इसी के किनारे आम्रवन में तथागत का विहार था। भगवान् ने यहीं अन्तिम भोजन ग्रहण किया था। हमने अपनी शक्ति के प्रभाव से ही कुशीनारा के मल्लों से अस्थियों को प्राप्त किया था। किन्तु, आज हम शक्तिहीन हैं। यदि हम बलवान होते तो आज पवित्र मल्लभूमि के किसी भी स्तूप को तोड़ने नहीं देते। सुना है कि अशोक के अमात्यों ने कुशीनारा के स्तूप को भी तुड़वा डाला है।" जयसिंह ने आवेश के स्वर में कहा।

"पिताजी ! क्या अशोक को समझाया नहीं जा सकता कि वह ऐसा न करे ? भदन्त लोग उसे क्यों नहीं समझाते ?"

"पुत्री ! अशोक को कौन समझाएगा ? वह अपनी धुन का पक्का है, साथ ही क्रूर भी । सब लोग उससे डरते हैं ।

"अच्छा तो पिताजी, मैं स्वयं अशोक के पास जाऊँगी और उससे कहूँगी कि वह ऐसा क्यों कर रहा है ?"

"पुत्री ! ऐसा न सोचो ।···" उत्तरा को मना करते हुए जयसिंह ने कहा ।

"पिताजी ! आप न डरें । मैं अशोक से अवश्य पूछूँगी और उससे कहूँगी कि पावा के विशाल स्तूप को पुनः बनवाए तथा भगवान् की अस्थियों को उसमें ही निधान कर दे ।"

"पुत्री ! जाने दो इस चर्चा को, चलो भोजन कर सो जाओ । प्रातः हम लोग स्तूप को देखने के लिए चलेंगे, तब कुछ निर्णय करेंगे ।" जयसिंह ने उठते हुए कहा ।

× × ×

कार्तिकी पूर्णिमा का दिन था । राजगृह नगर पूर्ण रूप से अलंकृत किया गया था । स्थान-स्थान पर तोरण और बन्दनवार लगे थे । ध्वजा-पताका फहरा रहे थे । प्रमुख मार्ग को कदली-स्तम्भ और पूर्णकलश से सजा दिया गया था । राजाज्ञा से नगर के सभी दास स्वतंत्र कर दिए गए थे । स्त्री-पुरुष विशेष रूप से उत्सव मना रहे थे । आसपास के ग्रामों तथा निगमों से उपासक-उपासिकाएँ राजगृह की ओर आ रही थीं । धीरे-धीरे राजगृह नगर बाहर से आनेवाले लोगों से भरता जा रहा था ।

सारी भीड़ क्रमशः वेणुवन विहार में एकत्र हो रही थी। वहीं सम्राट अशोक का आसन लगा था। अशोक ने उस भूमि की, जहाँ कि तथागत ने पहले निवास किया था, नंगे पैर यात्रा की थी। वह एक छोटे से आसन पर बैठा जन-समूह का अवलोकन कर रहा था। जनता शान्त भाव से आकर अशोक के सामने प्रणाम कर धीरे-धीरे बैठती जा रही थी। पास में अमात्यगण भी विराजमान थे। स्त्री-महामात्य तथा धर्ममहामात्य भी अशोक के पार्श्व में ही बैठे थे। कुछ समय तक परस्पर मंत्रणा करने के पश्चात्, अशोक को प्रणाम कर महामात्य ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा—

"मेरे धर्म-बन्धुओ एवं बहनो! आप सब लोग यहाँ बड़ी श्रद्धा एवं प्रेम से एकत्र हुए हैं। सम्राट को प्रसन्नता है कि राज्य में धर्म का पालन किया जा रहा है। तथागत के धर्म की महत्ता को सबने समझ लिया है। सम्राट भी आपके बीच यहाँ इसीलिए उपस्थित हुए हैं कि आप उनका दर्शन कर लें और उनकी इच्छा-पूर्ति में सहयोग करें। सम्राट को दुःख है कि भगवान् की पवित्र अस्थियों की खोज में उन्होंने केवल रामग्राम के स्तूप को छोड़कर सब स्तूपों को तुड़वा डाला, किन्तु कहीं से भी अस्थियाँ नहीं मिलीं। रामग्राम का स्तूप नागों के उपद्रव के कारण नहीं तोड़ा जा सका। जितने स्तूप तोड़े गए थे, उन्हें पुनः ठीक कर दिया गया। यदि सम्राट को ऐसा पहले ज्ञात होता कि उनमें अस्थियाँ नहीं हैं तो कदापि वे स्तूप नहीं तोड़े जाते। आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि एक बुद्ध उपासक

द्वारा अस्थियों के निधान-स्थान का पता लग गया और इसी राजगृह में सप्तपर्णी गुहा के अविदूर में ही अजातशत्रु द्वारा निधान की गई सब अस्थियाँ प्राप्त हो गई हैं। भदन्त महाकाश्यप ने सभी स्तूपों से अस्थियों को लाकर यहाँ सुरक्षित कर दिया था। अब सम्राट का विचार है कि देश में चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण हो और इन्हें धर्म-प्रचारार्थ उनमें रखा जाय। जिन स्थानों के प्राचीन स्तूपों को तुड़वाया गया है वहाँ भी इन अस्थियों का अंश प्रदान किया जाएगा।''

महामात्य ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ अपना आसन ग्रहण किया।

''क्या मैं यह जान सकती हूँ कि जब अस्थियाँ राजगृह में सुरक्षित थीं तब पहले इन्हींकी खोज क्यों नहीं कराई गई? व्यर्थ में आठों नगरों के स्तूपों को तुड़वाकर क्यों वहाँ की जनता के चित्त को कष्ट पहुँचाया गया तथा उन्हें सम्राट का शत्रु बनने के लिए बाध्य किया गया?'' उत्तरा ने व्यंग्य के स्वर में निर्भय होकर पूछा।

''बैठ जा। राजाज्ञा होने से पहले अपना मुख बन्द कर।'' महामात्य ने धमकाते हुए कहा।

''नहीं बहन! बोलती जाओ। मैं आज सब कुछ सुनने के लिए तैयार हूँ। मेरे सभी अपराधों के लिए दण्ड मिलना चाहिए। बहन! जो चाहो, सब कहो। मैं तुम्हें उत्तर दूँगा।'' सम्राट अशोक ने उठकर उत्तरा की ओर देखते हुए विनम्र भाव से कहा।

"आपने मुझे बहन कहकर सम्बोधित किया गया है। अतः मैं आपको क्षमा करती हूँ। अब मुझे कुछ भी कहना नहीं है।" उत्तरा ने प्रसन्नता के साथ कहा।

"बहन! तुम्हारी भाषा और वेश-भूषा से ऐसा लगता है कि तुम यहाँ की नहीं हो, तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"मैं मल्ल देश की सन्तान हूँ। पावा में मेरे पिता रहते हैं। आपने हमारे यहाँ के स्तूप को तुड़वा डाला, यद्यपि उसमें कुछ मिला नहीं। भगवान् की अस्थियाँ स्वयं अन्तर्धान हो गईं। उसी समय मैंने सोचा था कि आपसे पूछूँगी कि ऐसा क्यों किया जा रहा है ? मैं तो आपके नाम से भी घृणा करती थी और नहीं समझ पाती थी कि आप कैसे बौद्ध हैं। किन्तु आज मैंने अपने प्रश्नों का उत्तर आपके थोड़े से शब्दों में ही पा लिया। आप धन्य हैं। मुझे अपना भाई पा प्रसन्नता ही हुई। मेरे दोष क्षमा कर दीजिए।" उत्तरा ने निवेदन करते हुए कहा।

"क्या बहन! तुम अकेली हो ?"

"हाँ, सम्राट! यहाँ मैं पावा से अकेली आई हूँ। पावा में मेरे पिता हैं। माता बचपन में ही मर गई थीं। मैं एक रात, जबकि पिताजी सोए हुए थे, चुपके-से पलायन कर आई हूँ।"

"क्यों, चुपके-से क्यों ?"

"क्योंकि वह आपके पास पूछने के लिए नहीं आने देना चाहते थे। वह कहते थे कि आप क्रूर हैं। किन्तु आप तो देवता हैं!"

"बहन! अब मुझे सम्राट न कहो। मैं तुम्हारा बड़ा भाई

हूँ। तुम मेरी छोटी बहन हो। आज मेरे साथ अस्थियों के समारोह में सम्मिलित होओ और पाटलिपुत्र चलो। मैं तुम्हारे पिता को भी बुलवा लूँगा। तुम लोग वहीं मेरे पास रहना।" अशोक ने संकेत से उसे अपने पास बुलाते हुए आसन ग्रहण किया।

× × ×

"तुम यहाँ कैसे उदायी ! पावा से कब आए हो ?"

"जहाँ मेरे हृदय की देवी हो, वहाँ मैं न आऊँ ? प्रेम के समक्ष पावा से पाटलिपुत्र बहुत दूर नहीं। कहो, तुम तो अब साम्राज्ञी हो गयी हो न ! मुझे कौन स्मरण करेगा !"

"यह तुम क्या कह रहे हो उदायी ? अशोक मेरे बड़े भाई हैं। मैं उनकी छोटी बहन हूँ। उनके आने पर तुम्हारा भी परिचय करा दूँगी। हाँ, तुम्हारे हृदय की देवी कहाँ है ?"

"क्या अब यह भी बतलाना पड़ेगा ?" उदायी ने उत्तरा के हाथ को पकड़ते हुए कहा।

"तुम्हारे भाव ठीक नहीं जान पड़ते उदायी ! तुम्हें तो भगवान् की पूजा करनी चाहिए और ऐसे मनोविकारों को त्यागने का प्रयत्न करना चाहिए। मनुष्य का तन पाकर धर्म करना चाहिए। क्या है इस नश्वर शरीर से प्रेम करने में ? यह तो गन्दगियों से ही भरा हुआ है। इसमें कोई रत्न, मणि नहीं है।" उत्तरा ने हाथ छुड़ाते हुए निर्वेदभाव से कहा।

"उत्तरे ! यह सब क्या कह रही हो ? सचमुच तुम मेरे प्रेम को भूल गई हो। मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ। कितनी

बड़ी-बड़ी अभिलाषाओं को लेकर मैं पावा से यहाँ आया हूँ, उसे समझो और समझाने का अवसर दो। उपदेश का यह अवसर नहीं, उत्तरे! उपदेश तो भिक्षुणियाँ देती हैं। तुम तो एक रूपवती तरुणी हो।" उदायी ने उद्विग्नतापूर्वक कहा।

"हाँ, उदायी! मैं भिक्षुणी ही होना चाहती हूँ, जिससे कि मैं अधिकाधिक धर्म कर सकूँ।"

"और मैं?"

"तुम अपने लिए स्वयं सोच लो। क्यों नहीं तुम भी अशोकाराम में जाकर भिक्षु हो जाते? जब भिक्षु हो जाओगे, तब तुम्हारी सारी आसक्तियाँ जाती रहेंगी। सांसारिक विषय-वासना में क्या रखा है उदायी! ये सब दुःखदायक ही हैं। इनमें तनिक भी सुख नहीं।"

"अच्छा, यह तो बतलाओ कि तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं?"

"वह भी भिक्षु हो गए हैं। अब उनका नाम भिक्षु शीलगुप्त है। वह अशोकाराम में ही हैं। मैं भी शीघ्र ही भिक्षुणी-विहार में जाने का विचार कर रही हूँ।"

× × ×

उत्तरा को गृहत्याग किये लगभग बीस वर्ष हो चुके थे। वह आयुष्मती आम्रपाली के पास भिक्षुणी हो गई थी, किन्तु पावावासी समझते थे कि उत्तरा उदायी के प्रेम में ही घर से भाग गई है। उत्तरा के पलायन करने के ठीक दूसरे ही दिन उदायी ने भी तो पावा छोड़ दिया था और तब से दोनों का पता नहीं था। जयसिंह भी पुत्री के वियोग में व्याकुल होकर घर को वैसा

ही छोड़ कहीं चला गया था। उत्तरा और उदायी दोनों में घनिष्ठ मैत्री थी। दोनों एक-दूसरे को चाहते थे। उदायी जयसिंह का भांजा जो था। उत्तरा का विवाह भी तो उसीसे होता। मल्लों की यह सनातन प्रथा है। कुछ दिनों के पश्चात् वणिक् पुक्कुस को पाटलिपुत्र की वीथियों में भिक्षाटन करता हुआ उदायी मिला था––भिक्षु देश में, किन्तु उत्तरा का पता नहीं लग पाया था और न जयसिंह का ही उन्हें ज्ञान था।

अशोक ने भगवान् की अस्थियों को प्राप्त कर देश में चौरासी हजार स्तूपों एवं विहारों का निर्माण कराया। धर्म-संगीति कराई। धर्मप्रचारकों को विदेशों में भेजा और स्वयं तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। वह कुशीनारा गया। उसने वहाँ एक लाख स्वर्ण-मुद्रा व्यय कर महापरिनिर्वाण-चैत्य की स्थापना की। मुकुटबन्धन का जीर्णोद्धार कराया और सब स्थानों पर लेखांकित स्तम्भों को खड़ा कराया। वह पावा भी गया। वहाँ भी उसने एक महान स्तूप का निर्माण कराया और नगर से पूर्व आम्रबाटिका में सुवर्णा के किनारे एक सुन्दर विहार भी बन-वाया। पास में ही एक भिक्षुणी-आश्रम भी। भिक्षुणी-आश्रम में एक शिलाखंड पर पालि में यह लेख भी खुदवाया–– 'देवानपियेन पियदसिन लाजिन वीसतिवसाभिसितेन पावायं इमं भिक्षुनी आलामं उत्तलाय भगिनिया कालापितं।' अर्थात् देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) ने अभिषेक के बीस वर्ष पश्चात् पावा में बहन उत्तरा के लिए इस भिक्षुणी-विहार को बनवाया। वहीं पर एक ३० हाथ ऊँचा स्तम्भ भी था और

उस पर तथागत के पावा में अन्तिम भोजन ग्रहण करने आदि का वर्णन अंकित था। इन सब बातों के होने पर भी पावावासी नहीं जान पाए थे कि अशोक की बहन उत्तरा कौन है।

आज नगर में प्रसन्नता का वातावरण था। सब आनन्दित थे। उत्सव की पूरी तैयारी की जा चुकी थी। स्त्रियाँ सब प्रकार से सजकर थाल में पुष्प-धूप-दीप लेकर नगर से बाहर एक स्थान पर एकत्र हुई थीं। पुरुष गाजे-बाजे के साथ स्वागत के लिए प्रस्तुत थे। धर्ममहामात्य ने सूचना भेजी थी कि वैशाखी पूर्णिमा के दिन सम्राट धर्माशोक की बहन उत्तरा पावा आनेवाली हैं। वह कुछ दिन वहाँ रहेंगी भी, अतः उनका स्वागत समारोहपूर्वक होना चाहिए। सम्राट् की ऐसी आज्ञा है। नर-नारी भोगनगर की ओर से आनेवाले मार्ग पर दृष्टि लगाए पूर्वमुख खड़े थे और किसी रथ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। रथ तो कोई नहीं आया, किन्तु भिक्षुणियों का एक दल आता दिखाई पड़ा। लोगों ने समझा कि सम्भवतः इनके पश्चात् रथ आएगा और उससे सम्राट की बहन पधारेंगी। भिक्षुणी-दल के निकट आते ही लोगों ने ध्यान से देखा, महिलाओं ने पहचाना। स्वर वही था, आकृति भी वही; केवल किशोरावस्था अब तरुणाई का स्थान ले चुकी थी। नहीं, नहीं; यह उत्तरा नहीं हो सकती। वह तो घर से भाग गई थी और उदायी से विवाह कर लिया था। क्या जाने, भिक्षुणी भी हो गई हो!

"माताजी! आप भली प्रकार हैं न?" उत्तरा ने प्रेमपूर्वक एक वृद्धा से पूछा।

"आयुष्मती ! आप मुझे कैसे जानती हैं ?"

"मैं तो आपकी ही पुत्री हूँ। क्या आपने मुझे नहीं पहचाना ? मैं उत्तरा हूँ।" मुस्कराते हुए स्नेहिल शब्दों में उत्तरा ने उत्तर दिया।

"क्या कहा आपने ? उत्तरा ! अशोक की बहन आप ही हैं !"

बस, क्या था। उत्तरा का नाम सुनते ही शहनाई बज उठी। अर्चना आदि की सामग्रियों से विधिवत् स्वागत किया गया। आबाल-वृद्ध भिक्षुणियों के साथ उत्तरा को लेकर भिक्षुणी आश्रम गए। उत्तरा ने आश्रम में प्रवेश करते हुए मुख्य द्वार पर शिलापट्ट को पढ़ा और सम्राट अशोक की उदारता की, अपने धर्मबन्धु की महानता की मन ही मन प्रशंसा करते हुए आश्रम में प्रवेश किया।

× × ×

भिक्षुणी उत्तरा कुछ ही दिन पावा में रही और फिर वहाँ से भिक्षुणियों के साथ ही कुशीनारा की ओर प्रस्थान कर दिया। किन्तु शताब्दियों तक उसके त्याग की कहानी मल्लभूमि की महिलाओं में आदर्श कथा के रूप में प्रसिद्ध रही। किसी को यह ज्ञात नहीं कि उत्तरा की मृत्यु कहाँ हुई और उसकी अस्थियाँ कहाँ रखी गईं, किन्तु उसकी स्मृति में पावा का वह अशोक-निर्मित भिक्षुणी-आश्रम एक दीर्घकाल तक खड़ा रहा। आज भी उसके नष्टावशेष उत्तरप्रदेश के देवरिया जिलान्तर्गत 'सठियाँव' और 'फाजिलनगर' ग्रामों में भूमि के नीचे दबे पड़े हैं।

ममता

(पहली शताब्दी ईसवी)

आश्विनी पूर्णिमा का दिन था। वर्षावास की समाप्ति एवं प्रवारणा के उपलक्ष्य में कुशीनारावासी उत्सव मना रहे थे। सारा नगर ध्वजा-पताकाओं से अलंकृत था। स्थान-स्थान पर सुन्दर प्रवेश-द्वार बने हुए थे। कदलीस्तम्भ तथा धनवती के वृक्ष गड़े हुए थे। नगर की वीथियाँ सुगन्धियों से गमगमा रही थीं। वणिक वीथी से होकर शालवन तक जानेवाला मार्ग गेरू और हल्दी के रंगों से दोनों पार्श्वों में रंग दिया गया था। बीच से होकर रथ और जनसमूह के परिनिर्वाण-मंच तक जाने के लिए स्थान-निर्देश किया गया था। स्थान-स्थान पर रात्रि में प्रदीप जलाने के लिए दीपस्तम्भ भी बने हुए थे। शालवन के सभी विहार सजे हुए थे। आर्यसंघाराम विशेष रूप से सँवारा गया था। उसके पूर्वी द्वार पर एक सुन्दर धर्मासन बना हुआ था। तथागत के परिनिर्वाण-स्थान के दोनों शालवृक्ष अब जीर्ण हो चले थे। उनकी कुछ शाखायें सूख भी चुकी थीं। तथागत की अन्तिम शय्या के स्थान को कुछ ऊँचा करके चारों ओर से घेर दिया गया था, जिससे उसकी पवित्रता स्वतः प्रगट हो रही थी। वहाँ केतकी, कमल, जूही आदि के रंग-बिरंगे पुष्प बिखरे हुए थे। सामने अशोक निर्मित एक विशाल स्तम्भ था, जिसपर तथागत के परिनिर्वाण की घटना अंकित थी।

अपराह्न का समय था। लगभग दो बज रहा था। समारोहपूर्वक एक जुलूस नगर की ओर से निकला। जुलूस में आगे-आगे बाजेवाले चल रहे थे। उनके पीछे क्रमशः सजे हुए हाथी, घोड़े और रथ थे। तदुपरान्त एक सुन्दर रथ पर पत्थर की एक बुद्धमूर्ति थी। मूर्ति धर्मचक्र-प्रवर्तन-मुद्रा में थी। उसके दोनों ओर रथ पर बैठे दो तरुण चँवर डुला रहे थे। उनके पीछे महिलाएँ और पुरुष थे। वे आम्र-पल्लव से ढँके हुए छोटे-छोटे कलश लिये हुए थे। बुद्धस्तुति के गीत गाते-गाते धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। महिलाओं और पुरुषों में गीत गाने की प्रतिस्पर्द्धा-सी लगी हुई थी। पहले पुरुष गीत गाते थे, फिर महिलाएँ गीतों में ही उनका उत्तर दे रही थीं।

जुलूस शालवन में पहुँचकर मण्डलशाला के पास रुका। रथ से बुद्धमूर्ति उतारी गई और उसे धर्मासन के पार्श्व में एक सजे हुए आसन पर रखा गया। उसके सामने धूप, दीप और अगर जला दिये गये। कुछ सुगन्धित पुष्प एक थाल में सामने की ओर रख दिए गए। एक स्वर्ण-चसक में चन्दन भी रख दिया गया। चारों ओर से भिक्षु और उपासक-उपासिकायें धर्मश्रवण के लिए एकत्र हो गईं। सभी मण्डलमाला में बिछे आसन पर बैठ गए। भिक्षु पूर्व ओर धर्मासन से सट कर बैठे थे तथा अन्य लोग उनसे कुछ दूर पश्चिम ओर। संघनायक भिक्षु धर्मदिन्न ने धर्मासन पर बैठने के उपरान्त उपासक-उपासिकाओं को त्रिशरण सहित पञ्चशील दिया और इस प्रकार बोलना प्रारम्भ किया--

"मेरे धर्म-बन्धुओ तथा बहिनो ! आज मंगलमय दिवस है। हमने अभी-अभी वर्षावास की समाप्ति पर पारिशुद्धि-देशना, उपोसथ और प्रवारणा की है। प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी कठिन-चीवर प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही आप देखते हैं कि यह बुद्धमूर्ति कैसी भव्य है ! इसे देवपुत्र महाराज कनिष्क ने मथुरा से यहाँ भेजा है। उनकी आज्ञा से यहाँ एक विहार भी बनने जा रहा है। उसी में इस मूर्ति की स्थापना होगी। कुछ भिक्षु तथागत की मूर्ति का विरोध करते हैं। उनका कथन है कि कोई भी शिल्पी मूर्ति में बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी अनुव्यंजनों को नहीं बना सकता है तथा सर्वांग परिपूर्ण मूर्ति न बनाकर वह अपुण्य का भागी होगा, किन्तु आप देखें और विचार करें कि यह मूर्ति कितनी श्रद्धास्पद है। मूर्ति को देखते ही तथागत का स्मरण हो आता है। ग्रीक शिल्पी कैसे निपुण मूर्तिकार हैं। अब तो ऐसी मूर्तियों को निर्मित होना ही चाहिए। साधारण जन के लिए मूर्तियाँ ही श्रद्धा-केन्द्र सिद्ध होंगी। देवपुत्र महाराज कनिष्क ने इस मूर्ति को यहाँ भेजकर एक महान् पुण्यकार्य किया है। तैर्थिकों के मन्दिरों में भी तो मूर्तियाँ हैं, फिर हमारे विहार ही क्यों पिछड़ें ?"

"भन्ते ! मैं क्षमा चाहता हूँ। धर्मोपदेश में विघ्न डालना पाप होता है, किन्तु आप उपदेश नहीं कर रहे हैं, आप तो कनिष्क का गुणगान कर रहे हैं, जो हमारे देश का शत्रु है। एक विदेशी है और हमारे ऊपर शासन कर रहा है। वह इस समय जो-जो अत्याचार कर रहा है, उसे आप नहीं जानते हैं।

आप तो भिक्षु हैं, जानें भी तो कैसे ? उसी कनिष्क ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर भिक्षु अश्वघोष और तथागत के पात्र को अपने अधिकार में कर लिया है। उन्हें अपने साथ पुरुषपुर ले गया है। भदन्त वसुमित्र को भी पकड़वा बुलाया है। आप यह न सोचें कि आप वंचित रहेंगे। कल ही दो सैनिक साकेत से यहाँ आए हैं और अपने साथ आदेश लाये हैं कि कुशीनारा, पावा, आम्रग्राम, भोगनगर, अनूपिया और थूणग्राम के विहारों के प्रधान भिक्षुओं को शीघ्र श्रीगर के कुण्डलवन विहार में भेजा जाय। वहाँ ५०० प्रधान स्थविरों का धर्म-सम्मेलन होगा, जिसमें सम्पूर्ण सर्वास्तिवादी त्रिपिटक का संशोधन किया जायेगा तथा उन्हें संस्कृत में भाषान्तरित करने का भी आयोजन होगा। यह सब केवल प्रवंचना है। धर्म का बहाना लेकर हमारे देश पर एकाधिकार करना है। सरलतापूर्वक किसी देश को अपने पूर्ण प्रभुत्व में करने के लिए धर्म का साधन अमोघ अस्त्र होता है। हम मल्ल हैं। वीरों की सन्तान हैं। हम अपने धर्म-गुरुओं, पूजनीय स्थानों तथा राष्ट्र के प्रति हो रहे इस अमर्यादित कार्य का विरोध किये बिना नहीं रह सकते।" उपासक जयसेन ने बीच में ही उठकर भिक्षु धर्मदिन्न की बात काटते हुए आवेश के स्वर में कहा।

"जय ! ठीक कह रहे हो। हम लोग यूचियों को उनके देश भेजकर ही दम लेंगे। हमारे ऊपर शासन करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं।" सुशील ने जयसेन का समर्थन करते हुए कहा।

"इतने दिनों तक हमारे विहारों में मूर्तियाँ नहीं थीं तो

हममें श्रद्धा का अभाव था ? क्या हमारे पूर्वज अज्ञानी थे जो मूर्तियों को नहीं बनाए ? हमें तो ऐसा लग रहा है कि इसी बहाने कनिष्क हम लोगों को धीरे-धीरे विधर्मी भी बनाने का प्रयत्न करेगा और हमें भी मिहिर (सूर्य), ननैया (देवी) आदि देव-देवियों की पूजा करने के लिए बाध्य करेगा। आप कनिष्क का गुणगान बन्द करें और राष्ट्रोत्थान की ही बातें बतलाएँ।'' बाहुक ने धर्म-संवेगपूर्वक विनम्र भाव से कहा।

''हाँ, आप लोग ठीक ही कहते हैं। मैं स्वयं भी इसी विचार का था; किन्तु राजाज्ञा थी कि मैं आप लोगों को ऐसा ही सुनाऊँ। अब मुझे चिन्ता नहीं। हम सबको संगठित होना आवश्यक है। त्रिरत्न के आनुभाव से हम अपने मनोरथ की सिद्धि में सफल होंगे।'' भिक्षु धर्मदिन्न ने सबको शान्त करते हुए कहा।

(२)

''क्या तुम यूची हो ? कुशानवंश की अधम नारी ? मैं तुम्हें देखना भी पसन्द नहीं करता। तुमने मुझे स्पर्श कर अपवित्र कर दिया। मेरा मर जाना उत्तम था। मैं अपनी आँखों अपने को एक श्वेत स्त्री का कैदी होना कैसे देख सकूँगा !'' जयसेन ने बिछावन पर लेटे हुए ही आवेश के स्वर में कहा।

''हाँ, मैं यूची हूँ, किन्तु अधम नहीं हूँ। मैं नारी हूँ, किन्तु मेरी नसों में भी मानवरक्त संचार कर रहा है। मैंने आपको स्पर्श कर अपवित्र नहीं किया है, प्रत्युत उसे सम्हाल कर उसमें एक चेतना भरी है। उसे जीवित रखा है कि जय—मेरा

हृदयेश, अपनी मातृभूमि की रक्षा करने में समर्थ हो सकेगा। आप राष्ट्र की ओर से कैदी नहीं बने हैं। आप किसी के भी कैदी नहीं हैं।'' प्रेम से माधवी ने जयसेन के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

''तो मैं कहाँ हूँ और तुम कौन हो ? कैसे मैं तुम्हारे चंगुल में आ पड़ा हूँ ?''

''मेरे प्यारे जय ! आप इस समय कुशीनारा में नहीं, आम्रग्राम में हैं। मैंने पहली बार आपको शालवन में देखा था, तभी से आपको अपना प्राणधन बनाने की कामना बलवती हो गई थी। मैं आप से एकान्त में कुछ बातें करना ही चाहती थी और अवसर की हो तलाश में थी कि युद्ध छिड़ गया। उस दिन गन्धार के सैनिकों ने यूची सरदार के नेतृत्व में कुशीनारा को तबाह कर दिया। मैं सायंकाल अपनी सहेलियों के साथ हिरण्यवती की ओर घूमने जा रही थी कि कुछ कराहते हुए सैनिकों को नदी के किनारे पड़ा देखा। मैं आगे की ओर बढ़ रही थी, तब तक आपकी ओर दृष्टि पड़ी। आपको मैंने देखते ही पहचान लिया। आपको उस दिन पहली बार मैंने निकट से देखा। आप से लिपट गयी। आप बेहोश थे। आपको गहरी चोट आई थी। मैंने अपने भाग्याकाश में सूर्योदय-सा समझा और आपको अपने घर ले गई। मेरे भाई ही तो कुशीनारा के प्रशासक हैं। उन्होंने मुझे डाँटा और आपको जान से मारने तक के लिए उद्यत हो गए, किन्तु बहिन की ममता के आगे उन्हें विवश हो जाना पड़ा। उसी रात मैं आपको लेकर एक रथ

द्वारा यहाँ आ गई। स्वामी ! मेरे देवता ! अब आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं आपकी सेवा कर अपने को धन्य मानती हूँ।" माधवी ने जयसेन की छाती पर अपने सिर को टिकाते हुए कहा।

"क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ?"

"नहीं, मेरे देवता ! मैंने जो कुछ कहा है, सब सत्य है।"

"तो फिर एक मल्ल यूची कन्या के साथ विवाह करेगा ? अपने लोगों में घृणा का पात्र बनकर जीने से मर जाना ही उत्तम है।" जयसेन ने दुःख से करवट बदलते हुए कहा।

"जय ! मेरे स्वामी ! स्त्री चाहे जिस देश की हो, वह जिसे अपने हृदय में एक बार बैठा लेती है, वही उसका देवता बन जाता है। वह सदा उसकी पूजा करती है और उसके ही सुख-दुःख को अपना समझती है। मेरा जन्म कूचा में अवश्य हुआ, किन्तु अब मैं ऋषिक जाति की नहीं रही। मैं भी मल्ल हो गई हूँ। यहीं मेरा शेष जीवन व्यतीत होगा। आपसे कोई घृणा नहीं करेगा। भला मनुष्य से मनुष्य कभी घृणा करेगा ? फिर हम तो उस धर्म के मानने वाले हैं जिसमें समता एवं मानवता को अग्र-स्थान प्राप्त है। वह बौद्ध नहीं, जो मनुष्य-मात्र को समान न समझे। रूप-रंग और देश का बन्धन धर्म तथा प्रेम के मार्ग में अवरोध नहीं उत्पन्न करते। स्वामी ! आप अपनी माधवी पर विश्वास करें और एक बार मुझे 'देवी' कहकर चाहे मार ही क्यों न डालें।" माधवी ने कहते हुए अपनी छलछलाती आँखों को आँचल से पोंछ डाला।

"देवी ! मेरी रानी !! मैं सब कुछ समझ गया। तुम मेरी

कामनाओं की मानो साकार मूर्ति होकर ही अपने भाई के साथ इस मल्लभूमि में आई हो । मैं धन्य हूँ ।" जयसेन ने माधवी के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए उसकी आँखों में अपनी आँखें गड़ा दीं ।

(३)

दो घड़ी रात बीत चुकी थी । चारों ओर अन्धकार व्याप्त था । कृष्णपक्ष की नवमी थी । आकाश में तारे जगमगा रहे थे । हिरण्यवती के किनारे से महिलाओं की मधुर स्वर-लहरियाँ रह-रहकर श्रुतिपुटों तक पहुँच रही थीं । जयसेन और माधवी सैनिक वेश में घोड़ों पर सवार हो आगे बढ़ रहे थे । उनके पीछे दायें-बायें थोड़ी-थोड़ी दूर पर कुछ सैनिक-वेशधारी आम्रग्राम के तरुण धीरे-धीरे आगे की ओर चल रहे थे । उनके पास तलवार, ढाल और बर्छी ही हथियार थे । उनकी संख्या पचास से अधिक न थी । वे ज्यों-ज्यों हिरण्यवती के पूर्वी तट के निकट पहुँचते जा रहे थे, महिलाओं का गीत-स्वर स्पष्ट होता जा रहा था । उन्होंने कुछ पास आ जाने पर देखा कि नगर-वधुएँ, कुल-कन्यायें तथा मातायें हिरण्यवती के किनारे झुण्ड-की-झुण्ड खड़ी हो गीत गा रही हैं और कुछ तरुणियाँ नदी में उतर कर दीपदान कर रही हैं । सींकों से निर्मित छोटी-छोटी नौकाओं पर चार-चार, पाँच-पाँच दीप जलाकर नदी में प्रवाहित कर रही हैं । हिरण्यवती की धार में प्रवाहमान दीपकों की वे पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो आकाशगंगा में तारे चमक रहे हों ।

जयसेन ने अच्छा अवसर जानकर मुकुटबन्धन चैत्य से

थोड़ी दूर और दक्षिण की ओर जा, नदी पार किया और शालवन से होकर नगर-द्वार पर जा पहुँचा। अभी नगर-द्वार खुला ही था। नगर में आज उत्सव के उपलक्ष्य में नाच-रंग हो रहा था। महिलाओं के हिरण्यवती-तीर जाने के कारण द्वार-रक्षक भी निश्चिन्त बैठे सो रहे थे। कुछ नाच देखने भी चले गये थे। पूर्वदेशीय नृत्य का आनन्द लेते वे वहीं तन्मय हो गए थे। इसी बीच जयसेन ने माधबी को आगे बढ़ा, पीछे से सभी के साथ अचानक नगर में प्रवेश कर दिया। वे सीधे नगर के मध्य पहुँच गए। किसी ने उन पर ध्यान भी नहीं दिया। वे प्रशासक कादफीसस के भवन पर जा पहुँचे और चारों ओर से घेर लिया। यूची-रक्षकों के कान खड़े हो गए। वे नाच-रंग में लगे उत्सव देख रहे थे। अकस्मात् हुए इस आक्रमण की किसी को भनक भी न थी। देखते ही देखते मार-काट प्रारम्भ हो गई। कादफ़ीसस ने अपने सैनिकों को ललकारा—'चारों ओर से इन्हें घेर लो।'

"आप स्वयं घिर चुके हैं सरदार!" जयसेन ने मुस्कराते हुए घोड़े की पीठ पर से ही कहा।

"कौन? तुम? नीच! मेरी बहिन का अपहरण करनेवाला अधम! तुम्हारे कर्मों का फल अभी मिल जाता है। तुमने इतना साहस किया?"

"मैं जैसा भी हूँ सरदार! किन्तु अब आपका बहनोई हूँ। आप मेरे सम्बन्धी हैं, इसीलिए आपको मारूँगा नहीं। आप

हथियार रख दें और यहाँ से कूचा के लिए प्रस्थान कर जायँ। बस, इसी में भला है।"

"हाँ, भैया! जय ठीक कहते हैं। अब वे मेरे सर्वस्व हैं। उनसे बिगाड़ न करें।" माधवी ने घोड़े पर से ही कहा।

"कौन? मेरी प्यारी माधवी! क्या तुमने इसी दिन के लिए अपना नाम बदला था, कि इन पापियों का साथ दे सकोगी? तुम्हें अपने भाई पर दया भी नहीं आई कि उस रात्रि में इस मुर्दे को ले पलायन कर गई?"

"भैया! जो भी हुआ, सब ठीक ही हुआ। हम बौद्ध हैं। यह तथागत की भूमि है। हम सब एक हैं, चाहें कहीं भी हमारा जन्म क्यों न हुआ हो। रक्त तथा देश का सम्भेद विषमता नहीं उत्पन्न कर सकता।" माधवी ने घोड़े की पीठ पर से कूद कर तलवार फेंक दी और भाई से जालि पटी। इतने में चारों ओर से जयसेन के सैनिक आगे बढ़ आए तथा दोनों को घेर लिया। जयसेन रोकना ही चाहता था कि इतने में एक मल्ल सैनिक ने कादफीसस पर तलवार चला दी। कादफीसस उससे बचने के लिए जरा-सा पीछे की ओर हटा कि वह माधवी को जा लगी। जयसेन की आँखों के सामने ही उसकी हृदयेश्वरी छटपटाती हुई सदा के लिए शान्त हो गई!

"नीच! तुम्हें यही करना था तो माधवी को—मेरी ननैया को, उधर ही क्यों नहीं मार डाला? मेरे पास लाकर इस प्रकार वध करने में तुम्हें क्या मिल रहा है? लो अब मुझे भी मार डालो।" कादफ़ीसस ने तलवार फेंककर सिसकते हुए कहा और

माधवी के सिर लटकते हुए मृत शरीर को दोनों हाथों से पकड़ लिया।

(४)

आज न तो मल्लवीर जयसेन है और न कूचा की वीर कन्या माधवी ही। उन्हें मल्लभूमि की जनता भी सदा के लिए भूल चुकी है। फिर भी देवरिया जिले का अमयाग्राम आज भी आम्रग्राम की स्मृति में अपने प्राचीन नष्टावशेषों को सँजोये विद्यमान है, जहाँ प्रति सोमवार तथा शुक्रवार को 'हीरमती की देवी' की ग्राम महिलाएँ कड़ाही चढ़ाकर पूजा करती हैं। उन्हें क्या ज्ञात कि इसी स्थल पर कभी कादफीसस ने जयसेन को आम्रग्राम का प्रशासक नियुक्त किया था और अपनी दिवंगता बहिन की ममता में एक विशाल बुद्ध-मन्दिर का निर्माण कराया था, जिसकी बुद्धमूर्ति आज भी भग्नावस्था में शीत-धूप सहती सिद्ध बाबा के नाम से प्रसिद्ध है।

पद्मावला

(पाँचवीं शताब्दी)

हिरण्यवती की सभ्यता का प्रतीक मल्लों का केन्द्र कुशीनारा नगर कई शताब्दियों से श्रीहत हो चुका था, फिर भी नगर की वीथियाँ मल्ल रमणियों एवं मल्लवीरों के पराक्रम के गीत अब भी गा रही थीं। मल्ल गणतंत्र की भस्म पर राजतंत्र का उदय हो चुका था। उसकी भी शृंखलाबद्ध-सी परम्परा जारी थी। गुप्तवंशीय राजाओं का भाग्योदय-काल था। कुमारगुप्त प्रथम (ई० सन् ४१३–४५५) के शासन में मल्ल-जनपद के नगर तो नहीं, किन्तु तथागत के चरणरज से पूत स्थल– विशेषकर कुशीनारा का शालवन, जहाँ सम्यक् सम्बुद्ध ने महापरिनिर्वाण लाभ किया था––विकसित हो रहे थे। प्राचीन विहारों के जीर्णोद्धार हो चुके थे। शालवन से हिरण्यवती की ओर जानेवाले राजमार्ग पर अब शालपंक्तियाँ तो न थीं, किन्तु स्थान-स्थान पर विश्रामगृह, आसन और छोटे-छोटे अर्चना-स्तूप बन गए थे। किन्हीं-किन्हीं स्तूपों में बुद्धमूर्तियाँ भी स्थापित हो चुकी थीं। यह एक अद्भुत् बात थी कि सभी बुद्धमूर्तियाँ पश्चिमाभिमुख थीं। तथागत ने बुद्धत्व-प्राप्ति के समय से लेकर महापरिनिर्वाण के पूर्व तक अपने पैंतालीस वर्षों के दीर्घकाल में सदा पूर्वाभिमुख ही शयनासन लगाया था। उन्हें उदयगामिनी प्रतिपदा सर्वाधिक रुचिकर थी, केवल महापरिनिर्वाण के दिन ही

कुशीनारा के शालवन में यमक शालवृक्षों के मध्य उत्तर की ओर सिरहाना तथा पश्चिम की ओर मुख करके सिंहशय्या लगाई थी। मानो इसी सत्य को प्रकट करने के लिए कुशीनारा की सभी मूर्तियों का मुख पश्चिम की ओर था, चाहे वे किसी भी मुद्रा में क्यों न हों। कुशीनारा के विहार भिक्षुओं से परिपूर्ण थे। सहस्रों की संख्या में भिक्षु प्रतिदिन सूत्रों का स्वाध्याय किया करते थे। जब प्रातःकाल पंक्तिबद्ध होकर भिक्षु भिक्षाटन के लिए विहारों से निकलते थे और कुशीनारा के मार्ग पर आगे बढ़ते थे, तब ऐसा जान पड़ता था मानो काषाय वस्त्रधारी पात्र-चीवर से सुसज्ज कोई मौनावलम्बी अस्त्र-शस्त्र-विहीन सेना चली जा रही हो। आसपास के ग्रामों में भी धुतांगधारी भिक्षुओं की चारिका जन-समाज को आकर्षित किये बिना नहीं रहती थी। कभी-कभी उपासकों द्वारा निमंत्रित हो परित्राण-पाठ के लिए जाने वाले भिक्षुओं की शोभा-यात्रा विरक्ति-भाव का उद्गमस्रोत जान पड़ती थी। कुशीनारा की अट्टालिकाएँ पूर्ववत् शोभायमान थीं, केवल राजभवन उजड़ चुके थे। कुशीनारा के मध्य में एक सुन्दर मन्दिर बना हुआ था, जिसमें तथागत की जीवनी चित्रों एवं ईंटों की कलात्मक वास्तुकला में निर्मित थी। उसे एक सुन्दर कौतूहलागार-सा सजा दिया गया था। उसके पास ही पूर्व की ओर प्रसिद्ध वणिक वीथी थी, जिसमें मल्ल-जनपद के क्षौम एवं कौषेय वस्त्र, हिरण्यगर्भा के स्वर्ण, मणि, मुक्ता, शालिग्रामी भाण्ड, मलय-गिरि चन्दन, काष्ठ-निर्मित बहुमूल्य कला-भाण्ड, मल्लीय अन्न एवं हिरण्यवती

सभ्यता के वस्त्राभरण, जनपदीय संग्राह्य वस्तुएँ और विभिन्न जनपदों तथा देशों से विक्रयार्थ आई हुई सामग्रियाँ उपलब्ध थीं। मल्लों की रंगशाला सायंकाल मल्लीय नृत्य से झंकृत रहती थी। घरों में कार्यरत कुलवधुओं की स्वर-लहरियों पर थिरकता हुआ राग उनकी श्रम-प्रियता और स्वानुभूति के भाव प्रकट किया करता था। कुशीनारा का पद पखारती पूर्व ओर हिरण्यवती की निर्मल धारा प्रवाहमान थी। मुकुटबन्धन चैत्य और वहाँ के विहार जन-समागम के केन्द्र थे। वहाँ भी शताधिक भिक्षु निवास करते थे। अभिषेकशाला जीर्ण-शीर्ण हो गई थी। उसके चतुर्दिक् पुष्पोद्यान सुशोभित था। दर्शकों के विश्रामहेतु कुछ कलात्मक आसन बने हुए थे। उन आसनों को मल्लपूर्वजों ने बनवाया था, जो परम्परा से कुशीनारा के मल्लों के गौरव-चिह्न समझे जाते थे।

श्रावणी पूर्णिमा का दिन था। कुशीनारा में उल्लासपूर्ण वातावरण में श्रावणी-महोत्सव मनाया जा रहा था। दिनभर नृत्य-गान, वाद्य-संगीत में व्यतीत कर सायंकाल तरुण-तरुणियाँ अभिषेक-तीर्थ पर स्नान-हेतु मुकुटबन्धन के निकट एकत्र हुई थीं। कुछ कुलवधुएँ एवं कुलपुत्रियाँ स्नान कर पुष्पोद्यान के आसनों पर बैठी कदली-गान गा रही थी, कुछ क्रीड़ा-मग्न इधर-उधर घूम रही थीं, कुछ मिष्टान्न वितरण कर मनौती पूरी कर रही थीं, वहीं कुछ तरुण मल्ल नृत्य कर रहे थे। धेनुकमल्ल की एकमात्र तरुणी कन्या पद्मावला अपनी सहेलियों के साथ पुष्पोद्यान के पूर्वी कोने में सुसज्जित आसन पर बैठी श्रावणी-समारोह के दृश्य देख रही थी।

"क्यों पद्मे ! तुम्हें क्या चिन्ता सता रही है ?" प्रभा ने हँसते हुए कहा।

"अब तो इनका मन उड़ा-उड़ा सा ही रहता है।" रत्ना ने बात काटते हुए कह डाला।

"नहीं, इन्हें तो अब श्रावणी-पर्व पर ही ससुराल भेजकर हमें भी कदली-गान आरम्भ करना चाहिए।" सुखावती ने मुस्कराते हुए कहा।

"ऐसी कोई भी बात नहीं, तुम लोग तो व्यर्थ में व्यंग किए जा रही हो। वास्तव में मेरा मन इस उत्सव में नहीं लग रहा है। मुझे आज अपनी स्वर्गीया माँ का स्मरण आ रहा है। यदि माँ आज जीवित होती तो मैं इस समय यहाँ न होती, शालवन में जा परिनिर्वाण-मंच के समीप प्रदीप-पूजा करती। माँ मुझे सदा कहा करती थी कि तुम त्रिरत्न की शरण न छोड़ना। आज माँ नहीं रही, तो सारा संसार मेरे लिए उदास है।" कहते-कहते पद्मावला का गला भर आया। आँखों में आँसू ढलक आए।

"अधीर न हो पद्मे ! चलो, हम सब चलें और तथागत की पूजा कर पुण्य-लाभ करें।" प्रभा ने पद्मावला के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

"अच्छी बात है, हम लोग पुष्पादि भी ले लें और राजमार्ग से नगर से बाहर-बाहर ही शालवन चली चलें। पूजा कर धर्मश्रवण भी कर सकेंगी।" रत्ना ने सहमति के स्वर में कहा।

(२)

"भन्ते ! हम सब अभिषेक-तीर्थ पर स्नान कर परिनिर्वाण-मंच की पूजा करने के उपरान्त दर्शनार्थ आई हैं। कृपया हमें उपदेश दें जिससे हमारा कल्याण हो।" पद्मावला ने प्रणाम कर विनम्र-भाव से विहाराध्यक्ष शाक्यभिक्षु धर्मानन्द ने कहा। उसकी सहेलियाँ भी प्रणाम कर बैठ गईं।

"पुत्री ! तुमने बहुत अच्छा किया, जो आज यहाँ आई। तुम्हारी माँ श्रावणी-पूर्णिमा के दिन यहाँ विशेष रूप से बुद्ध-पूजा करती थी। उसने मल्लराजवंश की परम्परा में पूजा-पद्धति जारी रखी थी। तुम्हारे पिता धेनुक भी श्रद्धावान् हैं। वह इस नगर के सबसे धनी और सम्मानित पुरुष हैं। यदि उनकी दृष्टि इस ओर पड़ जाए तो परिनिर्वाण-मंच का उद्धार हो जाए।" धर्मानन्द ने गम्भीर भाव से कहा।

"भन्ते ! मुकुटबन्धन से लेकर शालवन तक जितने भी विहार और स्तूप हैं वहाँ भगवान् की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु परिनिर्वाण-मंच पर तथागत की मूर्ति क्यों नहीं बनी है ? अब तक वहाँ युगल शालवृक्षों के बीच तथागत का महापरिनिर्वाण-सूचक चिह्न मात्र बना है।"

"पुत्री ! इसीलिए तो मैंने तुम्हारे पिता का स्मरण किया। एक ऐसे श्रद्धावान् उपासक की आवश्यकता है जो भगवान् की पूरे आकार की परिनिर्वाण-मूर्ति और विहार का निर्माण करा सके। संघ का विचार है कि जो मूर्ति बने वह सभी महापुरुष लक्षणों और अनुव्यंजनों से युक्त हो। पहले संघ का विचार था

कि तथागत की मूर्ति न बनाई जाए। मूर्ति में सभी बुद्ध-लक्षण न दिखला सकने के कारण अपुण्य होता है, ऐसा हमारे पूर्वजों का भी विचार रहा है। यही कारण है कि प्राचीन ग्रन्थों में तथागत की मूर्ति का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और न तो पाँच सौ वर्ष से अधिक पुरातन कोई बुद्ध-मूर्ति ही किसी विहार में स्थापित मिलती है। पुत्री ! बुद्धमूर्तियों का निर्माण सबसे पहले कुशानवंशी बौद्धों ने किया था और तभी से मूर्तियाँ बनती आ रही हैं, किन्तु कुशीनारा के परिनिर्वाण-मंच के गौरव के अनुरूप अब तक इसे मूल रूप में ही रखा गया है। समय की माँग है कि इसे भी अब तथागत की भव्य मूर्ति के साथ विहार के आकार में परिवर्तित कर दिया जाए। देखो, वे शालवृक्ष अब जीर्ण हो चले हैं। प्रचण्ड वायु का एक धक्का ही उन्हें धराशायी कर सकता है। और एक बात। वर्षा, गर्मी और शीत में श्रद्धालु उपासक-उपासिकाओं को पूजा करने में कष्ट होता है। ऋतु के अनुकूल न होने पर हम लोग भी यहीं से बुद्ध-वन्दना करते हैं।''

''भन्ते ! मैं अवश्य पिताजी को इस पुण्य कार्य के लिए उत्साहित करूँगी। यह तो एक ऐतिहासिक कार्य होगा।'' पद्मावला ने उत्तर दे प्रणाम कर अपनी अपनी सहेलियों के साथ प्रस्थान किया।

(३)

दिन पर दिन व्यतीत होने के साथ कई वर्ष भी निकल गए, किन्तु पद्मा का सारा प्रयत्न असफल रहा। उसके कंजूस

पिता ने कुशीनारा के ही राजवंशीय धनाढ्य मल्ल युवक हरिबल के साथ पद्मा का विवाह कर दिया। विवाह में पद्मा को अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति दहेज में प्राप्त हुई और हरिबल भी उसी के घर आकर रहने लगा। एक दिन सायंकाल पद्मा की इच्छा हिरण्यवती-तट स्थित पुष्पोद्यान के परिभ्रमण की हुई। उसने हरिबल के साथ एक सुन्दर रथ पर बैठकर एक परिचारिका और सेवक के साथ प्रस्थान किया। रथ को मुकुटबन्धन से दूर ही राजमार्ग पर रोककर दोनों ने मुकुटबन्धन चैत्य को प्रणाम किया और पुष्पोद्यान की ओर चल पड़े। पुष्पोद्यान के एक आसन पर जा बैठे। साथ में परिचारिका भी पेय सामग्री लेकर उपस्थित थी। सेवक रथ के पास ही रह गया था।

"प्रिय! मैंने आज तक आप से कुछ माँगा नहीं है।" पद्मा ने सिर को धीरे से हरिबल के कन्धे पर टिकाते हुए कहा।

"माँगो पद्मे! जो भी चाहो माँग लो। मैं सब कुछ देने को प्रस्तुत हूँ। क्या चाहिए प्रिये?" हरिबल ने पद्मा के सिर पर हाथ फेरते हुए बड़े ही स्नेह से कहा।

"प्रिय! मुझे एक बहुत बड़ी याचना करनी है। भय है कि मेरी याचना कहीं ठुकरा न दी जाय। मैंने पिता जी के जीवित रहते उनसे अनेक बार याचना की थी, किन्तु मेरी प्रार्थना आज तक पूरी नहीं हुई। अब तो पिता जी भी नहीं रहे। हमारे पास धन की कमी नहीं, किन्तु आज तक...।"

"पद्मे! पहेली न बुझाओ। स्पष्ट कहो कि तुम्हें क्या चाहिए। क्या किसी आभूषण की कामना है? क्या वाराणसेय

स्वर्ण-रत्न जटित वस्त्र चाहिए ? क्या इन कोमल करों के लिए पर्वतीय शंख-वलय चाहिए ?" हरिबल ने पद्मा के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए उत्सुकता के स्वर में कहा ।

"प्रिय ! मुझे ऐसा कुछ भी नहीं चाहिए । इस नश्वर शरीर के लिए वस्त्राभरण की अब कोई इच्छा नहीं रही । मेरी बलवती इच्छा है कि शालवन के परिनिर्वाण-मंच का उद्धार हो । यदि हमारा सारा धन तथागत के चरणों में समर्पित हो जाय तो भी हमें प्रसन्नता होगी । सभी विहारों में बुद्ध-मूर्तियाँ बन गई हैं, किन्तु वहाँ अभी तक बुद्धमूर्ति नहीं बन पाई है, उसके निर्माण के लिए हम जैसे त्यागी एवं श्रद्धालुजनों की आवश्यकता है । क्या आप मेरी इस याचना को स्वीकार करेंगे ?"

"तुमने भी क्या माँगा, पद्मे ! क्या यह भी कोई माँग है ? तुम्हें ऐसी धुन कहाँ से लग गई ? देश में बहुत-से धनवान लोग हैं, राजा-महामात्य हैं, वे लोग इस कार्य को पूर्ण करेंगे । और फिर वह स्थान परम्परा से जिस प्रकार आ रहा है, वैसा ही रहे सो उत्तम है । क्या तुम्हें किसी भिक्षु ने ऐसा उपदेश तो नहीं दे दिया है जिससे तुम्हारा मन धन-विनाश की ओर लग गया है ?"

पद्मा हरिबल के मुख पर हाथ रखकर आगे कुछ कहने से रोकते हुए भभककर रो पड़ी । उसे ऐसा जान पड़ा कि अब उसका प्रयत्न तथा महास्थविर धर्मानन्द की अभिलाषा कभी पूर्ण न होगी । वह अपने मुख को आँचल से ढँककर देर तक

सिसकती रही। हरिबल उसे रोता-सिसकता छोड़ उद्यान में व्यग्र हो टहलने लगा। सेविका ने पद्मा को समझाकर शान्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उस आग में घी की फुहार ही पड़ती रही।

"आह! पद्मे!!" हरिबल ने बड़े ही आर्त स्वर में पुकारा।

पद्मा ने सिसकते हुए पति की ओर देखा और यह भी देखा कि उसका पति धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। वह आँसू पोंछते हुए दौड़ पड़ी।

"सर्प!" सेविका ने पद्मा से पहले ही पहुँचकर चिल्लाया।

"हाय! यह क्या?" पद्मा रोते हुए पति से लिपट गई। 'सर्प' शब्द को सुनते ही चारों ओर से जनसमूह आ जुटा। हरिबल के पैर के दाएँ अँगूठे में सर्प ने डँसा था। वहाँ से रक्त निकल रहा था। सब लोग भीड़ ही लगाए हुए थे, कोई कुछ उपचार नहीं कर रहा था। पद्मा ने देखा कि उसका प्राणप्रिय हरिबल अब उससे बिछुड़ना ही चाहता है। पहले तो उसे घबराहट हुई, किन्तु साहस हो आया! मृत्यु से लड़ने के लिए वह सन्नद्ध हो गई। उसके जीवन-धन के प्राण की रक्षा और मृत्यु की विजय में होड़ लग चली। पद्मा ने मुस्कुराते हुए बैठकर पति को प्रणाम किया और हरिबल के रक्त-प्रवाहित उस अँगूठे को अपने मुख में रख लिया।

लोग तमाशा ही देखते रहे। चारों ओर से घेरे विस्मय की दृष्टि डाले रहे। हरिबल बेहोश हो चुका था और पद्मा

उसके रुधिर को चूसने में निमग्न थी। थोड़ी देर में जब हरिबल की आँखें खुलीं और उसे होश आया तो उसने पद्मा को अपनी गोद में चेतना-शून्य पाया।

"पद्मे ! मेरी प्यारी पद्मे ! तुम्हारी सारी इच्छा पूर्ण होगी। मैं सब कुछ न्यौछावर कर दूँगा। पद्मे ! जरा इधर तो देखो !" हरिबल ने वेदना-व्यथित स्वर में फूट-फूटकर रोते हुए कहा।

"स्वामी ! आर्या अब नहीं रहीं। यह रोने का समय नहीं है। कैसी धार्मिक थीं वह।" सेविका ने रुँधे हुए स्वर में सिसकते हुए कहा।

(४)

आज कुशीनारावासी पद्मावला और हरिबल दोनों को ही भूल चुके हैं, किन्तु कुशीनारा की खुदाई में पद्मावला और उसके पिता धेनुक की मृण्मुद्राएँ मिल चुकी हैं। तथागत के परिनिर्वाण-मंच पर निर्मित बुद्धमूर्त्ति के सिंहासन पर अंकित यह श्लोक आज भी पद्मावला की कामना का स्मरण दिलाता हरिबल की कीर्ति को जीवित रखने में समर्थ है :—

देय धर्मोयं महाविहारस्वामिनो हरिबलस्य।
प्रतिमा चेयं घटिता दिनेन माथुरेण॥

(अर्थ—यह महाविहार के स्वामी हरिबल का धर्मदान है। यह प्रतिमा मथुरावासी 'दिन' द्वारा निर्मित है।)

महापरिनिर्वाण स्तूप से प्राप्त ताम्रघट के ऊपर ताम्रपत्र पर अंकित गुप्तकालीन लेख में शाक्य-भिक्षु धर्मानन्द की भी अचल श्रद्धा को प्रकट करता हुआ यह वाक्य आज भी शालवन-

उद्धारकर्त्ता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने को बाध्य करता है :—

'देय धर्मोयं अनेकविहारस्वामिनो हरिबलस्य। शाक्य-भिक्षु धर्मानन्दो सर्वत्रानुमोदते, महापरिनिर्वाणचैत्ये ताम्रपट्ट इति।"

(अर्थ—यह अनेक विहारों के स्वामी हरिबल का धर्मदान है। शाक्यभिक्षु धर्मानन्द सबके लिए अनुमोदन करते हैं। यह ताम्रपत्र महापरिनिर्वाण चैत्य में है।)

उस दिन मुकुटबन्धन के पास चतुर्थ स्तूप की खुदाई में हरिबल की अस्थियाँ एक सुन्दर पात्र में बन्द मिली थीं। पात्र पकाई हुई मिट्टी का था। पात्र पर हरिबल और पद्मावला के चित्र बने थे। चित्र में दोनों एक-दूसरे के गले में हाथ डाले प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे। नीचे की ओर उभरे हुए कुटिल अक्षरों में तीन पंक्तियों का एक लेख था। किन्तु, मजदूरों की असावधानी से कुदाल के एक प्रहार में ही वह चकनाचूर हो गया! अस्थियाँ बिखर कर हिरण्यवती की निर्मल जलधार में विलीन हो गईं!

जयश्री

(सातवीं शताब्दी)

अनूपिया ध्वस्त हो चुकी थी। अनोमा नदी के पूर्वी तट पर बना तथागत का प्रव्रज्या-स्तूप भी जीर्ण हो चुका था। उसके ऊपर घास के लच्छेदार गुल्म झूल रहे थे। नीचे के पुष्पाधान ठीक थे, जिन पर प्रतिदिन श्रद्धालु जन पुष्प चढ़ाया करते थे। दीपकों के जलाने के स्थान भी बने हुए थे। स्तूप के पास ही 'महाभिनिष्क्रमण विहार' था। जब सिद्धार्थ कुमार ने गृहत्याग किया था, तब उन्होंने इसी स्थल पर अनोमा नदी को अश्व-सहित छलांग मारकर पार किया था और यहीं राजसी वस्त्रालंकार त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया था। यहीं पर उन्होंने एक सप्ताह तक निवास करने के पश्चात् राजगृह की ओर प्रस्थान किया था। यह विहार इसी महान् घटना की स्मृति में बना था, जिसमें सिद्धार्थ कुमार के अश्व कन्थक, सारथी छन्द और तथागत के अनेक चित्र और मूर्तियाँ बनी हुई थीं। प्रति वर्ष आषाढ़ी पूर्णिमा को यहाँ सार्वजनिक मेला लगता था, जिसमें इन मूर्तियों के साथ-साथ एक रथयात्रा निकलती थी। भिक्षुओं के प्रवचन होते थे। उपासक-उपासिकाएँ अष्टशील ग्रहण कर उपोसथ व्रत रहती थीं और दान-उपदान किए जाते थे। इस समय विहार में केवल दस ही भिक्षु थे, किन्तु दो शताब्दियों पूर्व तक सहस्रों की संख्या में भिक्षु रहते थे।

मल्लगणतंत्र की भस्म पर विराजमान राजतंत्र के प्रभाव से अनूपिया की जनसंख्या घट चुकी थी। इसका व्यापारिक एवं सामरिक महत्व भी अब न था। सदानीरा अनोमा का जल भी पूर्व की अपेक्षा कम हो गया था। अब उसमें नेपाल की ओर से माल से लदी वणिकों की नावें नहीं आती थीं और न महार्घ काष्ठ एवं अन्य विक्रेय वस्तुएँ ही। नगर का प्राकार भी अब न था, केवल उसकी नीवें ही शेष थीं। नगर की रथ्याएँ एवं राजपथ प्रशस्त थे। नगर में सम्पन्न गृहपति थोड़े ही थे। वहाँ का धनी वर्ग आत्म-सुरक्षा की दृष्टि से कुशीनारा की ओर चला गया था। दो-चार ही ऐसे वणिक् थे, जो अब भी अनूपिया में रहकर धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए व्यापार-कार्य करते थे।

आज अनूपिया में बड़ी चहल-पहल थी। चारों ओर से जनसमूह नगर-श्रेष्ठी जितसेन की एकमात्र पुत्री जयश्री का विवाहोत्सव देखने के लिए नगर की ओर चला आ रहा था। कुशीनारा के प्रमुख वणिक् ताराबल के 'पुत्र कमलप्रभ से विवाह होना निश्चित था। कुशीनारा से मल्लदेशीय संस्कृति के अनुरूप बारात आनेवाली थी। उसमें मल्लीय नृत्य, पौरवाही (पुरुवाही), शृङ्गी, शंख, मृदंग, ढाक-तासा के अतिरिक्त कुछ भिक्षु भी आने वाले थे।

सारा नगर झंडी-पताकाओं से सजा दिया गया था। पूर्व वाले राजपथ पर वन्दनवार, तोरण और कदलिस्तम्भ स्थान-स्थान पर लगाए गए थे। अशोक की पत्तियों और आम के पल्लवों से सजे द्वारों और प्रदीपों से जगमगाते हुए कलश भी

६

नगर की शोभा बढ़ा रहे थे। अजितसेन के भवन के सामने एक विशाल मण्डप बना था, जो रंग-बिरंगे वस्त्रों, सुगन्धित पुष्प-पत्रों एवं झालरों से सुसज्जित था। मध्यभाग में एक हवनकुण्ड बना था और उसके पास ही वर-कन्या के लिए आसन लगे थे। एक सुन्दर कलश भी रखा हुआ था। सारा मण्डप कौषेय और आर्क वस्त्रों से बिछा हुआ था। लोग उत्साहपूर्वक अतिथियों के स्वागत की तैयारी में व्यस्त थे।

धीरे-धीरे रात्रि हो चली। नगर देखते-देखते दण्डउल्का और प्रदीपों से प्रभावित हो उठा। नेपाली चीड़, देवदारु और चन्दन के काष्ठखण्डों के जलने से चतुर्दिक प्रकाश और सुगन्ध की गमगमाहट व्याप्त हो चली। शहनाई की मधुर ध्वनि होने लगी। ढाक-तासे भी बज उठे। बारात की प्रतीक्षा में एक-एक पल युगों-सा व्यतीत होने लगा।

एक पहर रात बीतने पर पूर्व की ओर से श्रृङ्गों के बजने के शब्द सुनाई देने लगे। नगरवासियों का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ और उन्होंने देखा कि 'सजी-धजी बारात नगर के समीप आ चुकी थी। बारात में आगे-आगे दो अश्वों से जुता एक रथ था, जिस पर सारथी और कमलप्रभ बैठे थे। पीछे पंक्तिबद्ध-से गाजे-बाजे और प्रकाश के साथ बाराती चल रहे थे। इनके पीछे ताराबल का रथ था और उसके पश्चात् सम्बन्धियों की सवारियाँ थीं। कुछ पालकी और कुछ शकट भी थे।

बारात मण्डप पर पहुँची। उसका विधिवत् स्वागत किया गया। शंखध्वनि के होते ही अन्य वाद्य भी बज उठे। दोनों

ओर के वाद्यों से थोड़ी देर के लिए नगर गुंजायमान हो उठा। नृत्य, गान आदि भी हुए। बारातियों को मिष्टान्न एवं पेय देकर उनके विश्राम करने की व्यवस्था की गई। नगर की अतिथिशाला पहले से ही सुरक्षित कर ली गई थी। कुछ सम्मान्य व्यक्तियों के लिए अजितसेन के घर में ही रहने का प्रबन्ध था।

× × ×

"हम भी बौद्ध हैं, अबौद्ध नहीं; किन्तु परम्परा से हमारे कुलों में भिक्षु विवाह नहीं कराते। विवाह तो कोई भी गृहस्थ करा सकता है, किन्तु कुछ दिनों से हम लोग ऐसे विवाह करानेवाले गृहस्थों के अभाव में ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा ही कराने लगे हैं। आप लोग भी आज हमारी इस प्रथा का अनुमोदन करें। अब इसी का समय है।" अजितसेन ने विनम्र भाव से कहा।

"आप यह धर्म-विरोधी कार्य कर रहे हैं। मेरे पुत्र का विवाह इस प्रकार अनीति से न होगा। मेरे मल्लदेश की यह प्रथा है कि विवाह बौद्धपद्धति से ही होता है। मेरे पुत्र का विवाह भी बौद्धपद्धति से ही होगा" ताराबल ने आवेश में आते हुए कहा।

"आप जरा ध्यान दें। आज बौद्ध-पद्धति से क्या हो रहा है ? एक ही घर में माता शैव है, पिता शाक्त है, पुत्र बौद्ध तथा पुत्री वैष्णव। अब तो हमारे परिवारों को धर्म-समन्वय के आदर्श-रूप में ग्रहण कर लिया गया है। आप यदि अपने यहाँ बौद्धपद्धति से विवाह कराते हैं तो यहाँ इस पौरोहित्य-पद्धति से भी तो कराएँ। यह भी एक आदर्श ही होगा।"

"क्या कहते हैं आप, क्या आपकी कन्या के लिए मैं अपने पुत्र को विधर्मी बना दूँ ? ये भिक्षु लोग हमें क्या कहेंगे ? हमारा समाज हमें क्या कहेगा ? सभी हमें कोसेंगे, धिक्कारेंगे और कान्यकुब्ज के गौरवमय गोत्र से बहिष्कृत कर देंगे।"

"सगोत्र विवाह करना मात्र ही तो कान्यकुब्जों में रह गया है। वे अन्य गोत्रों से घृणा करते हैं, ऐसा जान पड़ता है कि वे बौद्धधर्म में भी वर्गवाद लाते जा रहे हैं।"

"ऐसा न कहें, तथागत का धर्म, जाति, गोत्र, कुल आदि सभी वादों से रहित है। उसमें किसी भी प्रकार की विषमता के लिए स्थान नहीं है। जो सगोत्र विवाह करते हैं, वे ही तो वास्तविक बौद्ध हैं, वे कान्यकुब्ज हैं। हमारे नरेश भी तो कान्यकुब्ज ही हैं। हम काश्यप, भारद्वाज, मौद्गलि आदि गोत्रों में विवाह नहीं करते, क्योंकि वे बौद्ध होते हुए भी मल्ल नहीं हैं।"

"क्या यह वर्गवाद नहीं है ? मल्लों के रक्तमांस में कौन-सी विशेषता है कि वे अन्य वर्गों से श्रेष्ठ हैं ? हम भी मल्ल हैं। हमारा गोत्र वशिष्ठ है। किन्तु हम इस बात का गर्व नहीं करते। यह तो तुच्छ और व्यर्थ बात है।"

"यदि बौद्धपद्धति से विवाह न होगा तो मेरा पुत्र बिना पाणिग्रहण-संस्कार हुए ही लौट जाएगा।"

"ऐसा न कहें। मेरी पुत्री अविवाहिता नहीं रह जाएगी। इसका विवाह तो होकर ही रहेगा। किन्तु सोचें कि कलश के पास मण्डप में दोनों आए हुए हैं, पुरोहित पाणिग्रहण-संस्कार

सम्पन्न कराने के लिए प्रस्तुत हैं। ऐसे समय में यह बात क्या उचित है ?"

"पिताजी, आप लोग चलें। मैं ऐसे दुराग्रही व्यक्ति की पुत्री से अपना विवाह नहीं करूँगा।" कमलप्रभ ने क्रोध से उठते हुए कहा।

"आप लोग मेरे पूज्य पिताजी का अधिक अपमान न करें। मैं स्वयं भी इस प्रकार विवाह करने के पक्ष में नहीं। मेरे लिए आप विवाद न करें। मैं अनूपिया की पुत्री हूँ। उसी अनूपिया की, जो त्याग की भूमि है। जहाँ तथागत ने भिक्षु-वेश ग्रहण किया। जहाँ अनुरुद्ध, भद्दिय, किम्बिल, भृगु, देवदत्त, आनन्द और उपालि ने प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा पाई। महात्यागी आयुष्मान् दब्बमल्ल ने भी इसी पुण्यभूमि में भिक्षु-दीक्षा ली। इसी नगर की करुणा और सुमेधा जैसी ललनाएँ अपनी गोदभरी गृहस्थी और सांसारिक वैभव को त्याग कर अकिंचन रूप ग्रहण कर भिक्षुणी बन गई थीं। आप जाएँ, आनन्दपूर्वक जाएँ, आपका कल्याण हो।" जयश्री ने कहते हुए मण्डप से सहेलियों सहित अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

वैशाखी पूर्णिमा का दिन था। सर्वत्र बुद्धजयन्ती मनाई जा रही थी। तथागत की उत्पत्ति, ज्ञानप्राप्ति और महापरिनिर्वाण-तिथि होने के कारण यह बौद्धों का महान् पर्व था। सभी बौद्ध रंगबिरंगे वस्त्र पहने अलंकृत होकर इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। आज कान्यकुब्ज नगर अन्य वर्षों की अपेक्षा अधिक सजा हुआ था। अपराह्न में तीन बजे बुद्धमूर्ति का जुलूस

निकला। एक हाथी पर पीतल की सुन्दर बुद्धप्रतिमा बैठाई गई थी। पीछे दूसरे हाथी पर एक भिक्षुणी के साथ सम्राट हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री बैठी हुई थी। उनके पीछे भिक्षु-भिक्षुणियों की पंक्तियाँ चल रही थीं। तदुपरान्त जुलूस था।

जुलूस बड़े ही समारोह एवं उत्साह के साथ विहार में पहुँचा। सभामण्डप में एक सजे हुए मंच पर तथागत की मूर्ति रखी गई। पार्श्वभाग में हर्षवर्धन और राज्यश्री बैठे थे। उनके पीछे भिक्षु और भिक्षुणियाँ थीं। हर्षवर्धन ने सभा का आरम्भ करते हुए उठकर कहा——

"भन्ते, संघ! मेरी बात सुनें। यदि आप लोगों की अनुमति हो तो आज मेरी बहन राज्यश्री ही कुछ कहे।"

"भाई ने मुझे कुछ कहने का अवसर प्रदान किया है। किन्तु मैं तो यहाँ भिक्षु लोगों से कुछ सुनने आई थी। आज के पुण्य पर्व पर उसे ही प्रवचन करने का अधिकार है जो तथागत का प्रिय शिष्य हो। मेरे साथ लगभग दस वर्षों से भिक्षुणी जयश्री रहती हैं। मैं उन्हें अपनी आचार्या मानती हूँ। मेरी ओर से वही कुछ कहेंगी। उनके भाषण से पूर्व मैं उनका परिचय दे देना अच्छा समझती हूँ। आप तीरभुक्ति स्थित प्राचीन मल्ल-जनपद की स्थविरी हैं। आपका जन्म अनूपिया में हुआ था। आप लगभग दस वर्षों से मेरे साथ रहती हैं। आप त्याग, सौजन्य, ज्ञान एवं करुणा की मूर्ति ही हैं। आप इससे अधिक स्वयं अपने सम्बन्ध में आप लोगों को बतलाएँगी।" राज्यश्री ने बैठे हुए ही प्रेमपूर्वक संतुलित शब्दों में कहा।

"आग···आग लगी ! दौड़ो !!" पीछे की ओर से कोलाहल हुआ। 'आग' शब्द सुनते ही सारी सभा रथ की ओर दौड़ चली। रात्रि में निकलनेवाली रथ-यात्रा के रथ में किसी तीर्थिक ने आग लगा दी थी। आग की लपटों ने देखते-देखते ही रथ को विकृत कर दिया। सभा तुरन्त समाप्त हो गई। हर्ष और राज्यश्री भी खिन्न होकर वापस होने के लिए सभा-मण्डप से लौट पड़े।

"कहो, जयश्री ! तुम यहाँ कैसे ?" एक भिक्षु ने आगे बढ़ते हुए पूछा।

"क्या भन्ते ! मुझे आप पहले से जानते हैं ?"

"क्यों नहीं ?"

"आप मुझे कैसे जानते हैं ?"

"अभी-अभी मैंने तुम्हारा जो परिचय सुना है, उसी से जान लिया है कि तुम अनूपिया की वही जयश्री हो जिससे मेरा विवाह होने जा रहा था और हम दोनों विवाह-मण्डप से उठकर सदा के लिए अलग हो गए थे।"

"क्या आप कमलप्रभ हैं, कुशीनारावासी ?"

"हाँ, मैं कमलप्रभ ही हूँ, किन्तु जबसे मैं प्रव्रजित हुआ हूँ, मेरा नाम भिक्षु शीलगुप्त हो गया है। मैं उसी समय घर से निकल कर प्रव्रजित हो गया था। आज भिक्षु हुए पूरे दस वर्ष हो गए। मैं भिक्षु क्या हुआ हूँ, मैं तो तुम्हारे ही रूपरंग का स्मरण करते फिरा करता हूँ। तुम कैसी साध्वी हो शुभे !

तुम्हारा साथ मेरे जीवन का उद्धारक बन जाता ! मैंने तो अब तुमको पा लिया है । अब तुम्हारे ही साथ मैं विचरा करूँगा ।''

''सच ? जयश्री ने प्रेम और आश्चर्य से पूछा । उसका हृदय कमलप्रभ के त्याग एवं अपने स्नेह के प्रति कृतज्ञता के भाव से आप्लावित हो गया । पूर्व का घृणाभाव जाता रहा । सब लोग चले गए, किन्तु वे दोनों घंटों वहीं खड़े-खड़े बातें करते रहे । उस दौड़धूप में राज्यश्री को भी जयश्री की सुधि न आई । विहारवासी भिक्षु-भिक्षुणियाँ उनकी ओर देखकर आश्चर्य करते । भला ये दोनों तरुण भिक्षु-भिक्षुणी इतनी तल्लीनता से कौन-सी बात कर रहे हैं !''

''हम अपने देश लौट चलें और अनूपिया में ही चलकर रहें ।'' कमलप्रभ ने आग्रह किया और वह जाती हुई जयश्री को टकटकी लगाकर देखता रहा ।

× × ×

दूसरे दिन जयश्री ने राज्यश्री, हर्ष और भदन्त दिवाकर-मित्र से बिदा ले बौद्धतीर्थों की यात्रा के निमित्त प्रस्थान किया । राजकीय व्यवस्था से उसने संकाश्य, ऋषिपतन मृगदाय, बुद्ध-गया और कुशीनारा के दर्शन किए । कुशीनारा में ही कमलप्रभ भी मिला । वह पहले ही वहाँ पहुँच गया था । दोनों ने एकसाथ कुशीनारा के परिनिर्वाण और मुकुटबन्धन चैत्यों के अतिरिक्त बुद्ध-मन्दिर और अन्य पाँच स्तूपों की भी वन्दना की । उन्होंने कुशीनारा के विहारों की चिन्तनीय अवस्था देखी और देखा कि कुशीनारा नगर बिलकुल ध्वस्त हो चुका था । नगर में बहुत

कम लोग रहते थे। दोनों ने कुशीनारा में ही रहकर उसके पुनरुद्धार का संकल्प किया, किन्तु वे भी मानव-सन्तान थे और मानव की स्वाभाविक दुर्बलताओं से बच न सके। अपने एक दीर्घकालीन त्याग और तप के जीवन को उन्होंने थोड़े ही दिनों में सांसारिक उपासक-उपासिकाओं के रूप में परिवर्तित कर दिया। बौद्ध-धर्म की अनेक विशेषताओं में उन्हें भिक्षुवस्त्र-त्याग की भी स्वतन्त्रता का लाभ प्राप्त हुआ।

जयश्री के परामर्श से दोनों कुछ ही दिनों के पश्चात् अनूपिया चले गए। वृद्ध अजितसेन अपनी पुत्री के आने के समाचार से हर्षोत्फुल्ल हो उठा। उसके दूसरी कोई सन्तान न थी। अतः उसने सारी सम्पत्ति का स्वामी उन्हें ही बना दिया। अब वे आनन्दपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने अनूपिया के विहारों एवं स्तूपों का जीर्णोद्धार कराया। अनूपिया का 'जयश्री महाविहार' बहुत दिनों तक प्रसिद्ध रहा, जिसे अपनी पत्नी के ही नाम पर कमलप्रभ ने बनवाया था। उनकी सन्तानों ने कई पीढ़ियों तक उसका संरक्षण करते हुए अपने कर्तव्य का पालन किया।

आज जयश्री नहीं है, किन्तु उनके नाम पर निर्मित विहार के नष्टावशेष कुशीनगर से पश्चिम मझननदी के किनारे ढाढ़ा नामक ग्राम के पास 'घोड़टप' नाम से आज भी विद्यमान है, जहाँ निकटवर्ती ग्रामों की महिलाएँ 'जसरा माई' (जयश्री माता) के लिए प्रदीप जलाती तथा मनौती माना करती हैं।

●

सुगतपुरी

(बारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण)

युगों से अजस्र प्रवाहिनी खाणुका नदी कलकलनिनाद करती गतिमान थी। मल्ल-वसुंधरा की कंठमाला-सी हिरण्यवती भी पूरब से आकर उसका आलिंगन करती थी और इन दोनों के संगम से थोड़ी दूर हटकर खाणुका के तीर सुगतपुरी का प्रसिद्ध विहार था। यह विहार दोनों सरिताओं द्वारा सिंचित भू-भाग के दक्षिणी छोर पर स्थित मल्ल-जनता का एक दर्शनीय स्थान था। कुशीनारा के शालवन से लगे हुए बलिहरणवनखंड की वनपंक्तियाँ सुगतपुरी तक पहुँचती थीं और संगम की ओर से हिरण्यवती-तट की ओर मुड़ी हुई थीं। सुगतपुरी को अनूपिया, कुशीनारा, पावा इत्यादि मल्ल-जनपद के प्रमुख नगरों से मार्ग आते थे। विहार में कोई बीस भिक्षु रहते थे। विहार की बुद्धमूर्ति अद्‌भुत शक्तियों की धनी मानी जाती थी। ग्राम में सभी धर्मावलम्बी मिलजुलकर प्रेम से रहते थे। शाक्य, मल्ल और कोलिय प्रायः बौद्ध थे। कृषिकर्मान्त तथा वाणिज्य इन्हीं तक केन्द्रित था। यही श्रीसम्पन्न थे। अन्य इनके आश्रित और निर्धन थे।

प्रतिमास की पूर्णिमा और अमावस्या को विहार में उपोसथ व्रत मनाया जाता था। चारों ओर के ग्रामों से झुण्ड के झुण्ड गीत गाते उपासक-उपासिकाओं का समूह आता था। विहार में

भिक्षुओं को भोजनदान देता था, धर्मोपदेश सुनता और रात्रि-जगौनी करता था। आज आश्विन-पूर्णिमा थी। आकाश में पूर्व की ओर से चातुर्मास की कौमुदी से पूर्ण चन्द्र अपनी सोलहों कलाओं से युक्त हो निकल चुका था। भिक्षुसंघ ने प्रवारणोत्सव मना लिया था। मन्दिर में श्रद्धालु जन बुद्ध-पूजा करने में लीन थे। त्रिशरण-पंचशील के उच्चस्वर हो रहे थे। रह-रहकर विहार में शंख, पणव, शृङ्ग आदि बज उठते थे। विहार प्रदीप-पंक्ति से जगमगा रहा था। अगरु-धूप की सुगन्ध वायु में मादकता भरती-सी दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। परिवेण के मध्य एक सुन्दर मण्डलमाला बनी हुई थी और उसे भली-भाँति सजा दिया गया था। उसमें धर्म-कथिक का धर्मासन लगा हुआ था। धर्मासन के पास सुगतपुरी के ग्राम-प्रामोख्य का ज्येष्ठ पुत्र सिंह-यश पहले से ही आकर बैठ गया था, जिससे धर्मोपदेश के समय उसे स्थान मिलने में कठिनाई न हो। आज संघराज धर्मरुचि महास्थविरपाद का अभिधर्म पर प्रवचन होने वाला था। सिंह-यश को वहाँ बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि दिनभर कृषि-कर्मान्त में लगे रहने के कारण उत्पन्न श्रान्ति से नींद आने लगी। वह वहीं बैठे-बैठे ऊँघने लगा।

"अरे यश! तुम यहाँ क्या कर रहे हो? क्या यहीं पूजा हो रही है?" हेमलता ने पीछे से आकर सिर पर हाथ रखते हुए पूछा।

"कौन? लता? तुम यहाँ कैसे आ गई?"

"हाँ, लता ही। क्यों नहीं आती? तुम लोग गाँव-घर

छोड़कर मन्दिर में आ जुटे हो, सबके घर ताले लगे हुए हैं, बच्चे तक ग्राम में नहीं हैं, थोड़े-से जो तैर्थिक हैं वे भी तमाशा देखने यहीं आ गए हैं, उनकी कुल-वधुएँ मात्र घर में हैं; उधर यवनों का भय बना हुआ है, न जाने कब उनके आक्रमण हो जाएँ और हमारा सब कुछ जाता रहे।''

''हाँ, लते ! तुम ठीक ही कहती हो। इस समय हमें मूर्ति की शक्ति नहीं चाहिए, प्रत्युत अपने ही बाहुबल के भरोसे तैयार होना है। मूर्तियाँ भी तो इन्हीं हाथों की कृति हैं। धर्म-पालन उत्तम है, किन्तु इतना आडम्बर ठीक नहीं। हमें अपने राष्ट्र, स्वत्व तथा धन-सम्पत्ति की रक्षा के साथ धर्म की रक्षा करनी है, न कि सबको गँवा कर धर्म के लिए मरते रहना है। बुद्धिमानी तो इसी में है कि हम सभी संगठित होकर मल्ल-भूमि की, मल्ल-संस्कृति की, मल्ल-मर्यादा की रक्षा करें और यवनों को बतला दें कि उनका आगे बढ़ना विपत्ति में अपने को झोंकना है।'' सिंहयश ने खड़े होकर हेमलता के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा।

''क्या तुमने सुना है कि यवनों ने पश्चिम के हमारे सभी विहारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, बुद्ध-मूर्तियों को तोड़ डाला है और भिक्षुओं का वध कर संघारामों में आग लगा दी है।''

''हाँ, लते ! मैंने सुना है और आज ही तो यवनों की सेना ने कुशीनारा के विशाल-स्तूपों को अपवित्र कर दिया है। तथागत की मूर्ति में जड़े हुए हीरे-मोती-रत्न ले लिये हैं। आर्यसंघाराम तथा मुकुटबन्धन को जला डाला है। हैहयवंशी

राजा कुछ भी नहीं कर सके। वे मद्यपी, द्युतशीली नरेश क्या कर सकते हैं ? उन्हें तो अपने अन्तःपुर से ही अवकाश नहीं। उनकी रंगशाला में नर्तकियों के छुमछनन ही सदा होते रहते हैं। वे सभी कार्य धर्म के विरुद्ध ही कर रहे हैं। नगर की ही क्या, जनपद की सुन्दरी कुलवधुएँ तथा कुलपुत्रियाँ भी इनकी पापेच्छा एवं कामलिप्सा की शिकार हुआ करती हैं। इन अधर्मियों ने कुशीनारा तथा काश्यपनगर (कसया) के निकटवर्ती ग्राम सरभञ्ब्वा (शबया) में बुद्ध-मन्दिर बनवा कर धार्मिक होने का ढोंग रचा है। निगमवासी इनकी सारी चाल समझ रहे हैं। अब कोई भी इनके प्रलोभन में आने को नहीं। सम्भव है कि यवन भी इस बात को जानते हों।"

"तुम्हारा कथन ठीन है यश ! किन्तु अब हमें यों ही समय नहीं गँवाना चाहिए। शीघ्र यवनों का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए।" हेमलता ने कहते हुए सिंहयश के कंधे पर अपना सिर टिका दिया।

"मेरी लते ! चलो, हम लोग संघराज से मिलें और उन्हें समझाएँ कि वे अभिधर्म पर प्रवचन न कर राष्ट्र-संरक्षण का उपदेश करें। इस समय देश-रक्षा का प्रश्न है। हमें संगठित होकर यवनों का सामना करना चाहिए।"

"हाँ, चलो, हम दोनों चलकर उन्हें समझाएँ।"

(२)

"तुम लोगों में तरुणाई का मद है। तुम्हें धर्म से क्या ? इतने श्रद्धालु जन जो एकत्र हुए हैं, वे सब मूर्ख हैं, और तुम्हीं

बुद्धिमान् हो ? जानते हो, जो व्यक्ति धर्म-कार्य में विघ्न डालता है, वह अवीचि नरक में पड़ता है । तुम्हें पाप से डरना चाहिए । तथागत की महिमा से सुगतपुरी का कुछ नहीं बिगड़ेगा ।" संघराज धर्मरुचि ने धमकाते हुए कहा ।

"भन्ते ! ऐसी बात नहीं है । तथागत ने सदा देश-रक्षा की बात कही है । परतन्त्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं, और न स्वाधीनता से बढ़कर कोई सुख । उन्होंने स्वयं शाक्यों के रक्षा-हेतु विडूड़भ को रोका था । लिच्छवियों के रक्षा-हेतु मगध के महामन्त्री वर्षकार को समझाकर अजातशत्रु को आक्रामक होने से बचाया था । शाक्य-कोलिय युद्ध उपस्थित होने पर स्वयं रोहिणी नदी तक यात्रा की थी । तथागत का सारा जीवन लोकहित-चर्या में ही व्यतीत हुआ था । यदि आज तथागत होते तो अवश्य कहते कि तुम लोग डटकर यवनों का सामना करो और अपने पवित्र स्थलों को अपवित्र तथा नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाओ ।" सिंहयश ने विनम्र-भाव से कहा ।

"तो क्या तुम तथागत पर भी यह कलंक लगाना चाहते हो कि वे हिंसा के लिए लोगों को प्रोत्साहित करते थे ?"

"नहीं भन्ते ! तथागत शांतिवादी थे । वे अहिंसा धर्म के प्रणेता थे । वे जो कुछ आदेश देते अहिंसात्मक ढंग से ही करने के लिए । मेरे कथन का तात्पर्य यह नहीं कि हम यवनों के साथ युद्ध कर रक्तपात मचाएँ और खाणुका तथा हिरण्यवती की पवित्र निर्मल धारा को रक्तिम कर दें । मेरा तो कहना है कि हम पूर्णतया तैयार होकर यवनों का अहिंसक ढंग से सामना करें ।"

"यह कैसे सम्भव है यश ?" बीच में बात काटते हुए हेमलता ने पूछा ।

यह सब सम्भव है । यदि हम अपने सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर उनके सामना के लिए प्रस्तुत हो जाएँ, तो हमारी विजयवाहिनी सेना के सामने यवन-सेना एक क्षण भी नहीं खड़ी हो सकती । वह भय से पलायन कर जाएगी । युद्ध करने की परिस्थिति ही नहीं आएगी । और यदि उसने हम पर आक्रमण किया तो उसका उत्तर तो देना ही होगा । हाँ, हम पहले उस पर आक्रमण नहीं करेंगे, अपने नगर, निगम, विहार आदि की रक्षा तो करेंगे ही । क्या तथागत ने काशी जनपद के लिए बार-बार युद्ध होने पर भी प्रसेनजित् और अजातशत्रु में से किसी को रोका था ? यह तो राष्ट्रधर्म है । ऐसा करना सर्वथा धर्म-सम्मत है ।"

"हाँ, यश ! तुम ठीक कहते हो ।" हेमलता ने अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा ।

"अच्छा, यश ! तुम दोनों की बातें मुझे भी पसन्द है । मैं पहले भ्रम में था । मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसे धर्मज्ञ और नीतिज्ञ हो । यदि तुम्हारे समान मल्ल जनपद के सभी दम्पति राष्ट्रीयता की भावना से भरे हों, तो इस भूमि के नागरिकों का मस्तक सदा ही भास्वर रहेगा और मल्लभूमि सर्वदा अपराजिता बनी रहेगी ।" संघराज ने प्रसन्नतापूर्वक कहा ।

"भन्ते ! हम विवाहित नहीं हैं, किन्तु हमने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि यवन-आक्रमण से अपने विहार, नगर, निगम आदि

की रक्षा करके ही विजयोत्सव के शुभावसर पर प्रणयसूत्र में बँधेंगे। स्वयंवर रीति से विवाह करेंगे। हमारी वंशानुगत यही रीति भी है।"

"हाँ, भन्ते ! मल्लवीर सदा से ही ऐसा करते आ रहे हैं। उनका प्रणय तो कला-प्रदर्शन के उपरान्त ही होता है। क्या आपने सेनापति बन्धुलमल्ल और क्षत्राणी मल्लिका देवी की जीवन-चर्य्या नहीं पढ़ी है ?" हेमलता ने मुस्कराते हुए आँखें नीची कर उभय कपोलों पर अरुणिमा की रेखा दौड़ाते हुए कहा।

"अच्छा, यश ! पुत्री लते ! मैं भी संकल्प करता हूँ कि नगर, निगम तथा विहार की रक्षा के उपरान्त तुम दोनों का पाणिग्रहण-संस्कार इसी स्थान पर स्वयं कराऊँगा। लो, मैं इस समय जनता को अभिधर्म का उपदेश न कर, देश-रक्षा का ऐसा मंत्र दूँगा कि सब नर-नारी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो यवनों के अवरोध के लिए प्रस्तुत हो जाएँ। देखो यश ! तुम पुरुष सेना का संचालन करना और तुम लते ! मातृग्राम-सेना का।"

"भन्ते ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" सिंहयश और हेमलता ने कह पंचांग प्रणाम कर प्रस्थान किया।

(३)

सुगतपुरी की जनता लाठी, भाले, बर्छी, तलवार और तीर-धनुष से सुसज्जित थी। एक ओर से मातृग्राम (महिला) और दूसरी ओर से पुरुष सैनिक वेश में खाणुका नदी के दोनों

किनारे वनगुम्बों में छिपे थे। सभी घर शून्य थे। द्वारों के किवाड़ खुले थे। गाय, बैल, अश्व द्वारों पर बँधे थे। विहार में प्रदीप जगमगा रहे थे। मंदिर का सिंहद्वार भी खोल दिया गया था। काषाय वस्त्रधारी भिक्षु विहार से निकल, दोनों सेनाओं के आगे वनखंड में बढ़कर यवन-सेना की गतिविधि देख रहे थे। संघराज धर्मरुचि हेमलता और सिंहयश की सेनाओं के सेनापति की भाँति कभी इस पार तो कभी उस पार जाकर परामर्श दिया करते थे।

चन्द्रमा के ढलने के पश्चात् कोई १ बजे रात्रि में यवन-सेना के नदी के तीर से होकर आगे बढ़ने की आहट मिली। वनखंड से भिक्षुओं ने भी आकर समाचार दिया। उसी समय यवन सैनिकों ने कुछ निहंग ग्रामीणों को मार्ग में मार डाला और उनके शरीरों को रौंदते हुए युद्ध का तूर्य बजाया। बस, क्या था, दोनों ओर से उभय-सेना यवनों पर सिंह-सिंहनी की भाँति टूट पड़ी। घमासान युद्ध होने लगा। सिंहयश ने यवन-सेनापति का अवरोध किया और हेमलता ने पीछे से धावा बोला। देखते-देखते ही यवनों के मृत कलेवरों से खाणुका नदी के दोनों तट बिछ गए। यवन-सेनापति मारा गया। बचे-खुचे यवन-सैनिक बलिहरणवन-खंड में तितर-बितर होकर भाग गए। मल्लों की विजय हुई। "मल्लकन्या हेमलता की जय! मल्लपुत्र सिंहयश की जय!! संघराज धर्मरुचि की जय!!!" के उच्चघोष के साथ मल्ल सेना सुगतपुरी की ओर लौट पड़ी। दोनों सेनाएँ खाणुका के उभय पार्श्वों से होकर विहार में आ जुटीं।

भोर हो रहा था। मंडलमाला में बने धर्मासन पर संघराज विराजमान हुए। उन्होंने हेमलता और सिंहयश को बुलाकर हर्षध्वनि के साथ एक-दूसरे का हाथ थम्हाते हुए मंगलसूत्र बोलना प्रारंभ किया। दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े प्रसन्नता से बैठ गए। बैठते ही हेमलता ने लज्जा से सिर झुका लिया और सिंहयश के ऊपर लुढ़क गई। सिंहयश ने भी प्रसन्नता से उसे पकड़ लिया।

"यह क्या ?" जनता बोल उठी। संघराज चौंक पड़े। देखा गया कि दोनों के सिर असि-आघात से विक्षत हो गये थे। रुधिर-धारा उनके वस्त्रों से होकर प्रवाहमान थी और वे दोनों प्रणयी प्रसन्नमुद्रा में एक-दूसरे का हाथ पकड़े आलिंगनबद्ध स्वर्ग का मार्ग देख रहे थे !

(४)

खाणुका और हिरण्यवती सरिताएँ आज भी खनुआ और हिरवा की नारी के रूप में विद्यमान हैं। सुगतपुरी के नष्टावशेष भी कुशीनगर (कुशीनारा) के लगभग दो मील दक्षिण हतवा से पूरब प्राचीन महामार्ग पर एक दीर्घकाल से अपने अतीत का गौरव गुनते पड़े हैं। लोग उन्हें बंजारों की बस्ती कहते हैं और वहाँ के ध्वस्त कूप को धनराशि से भरा हुआ समझते हैं। किन्तु हेमलता और सिंहयश की वीरता के गान शताब्दियों से विस्मृत हैं। कभी-कभी ही अर्द्धनिशा में, वहाँ के नष्टावशेषों

में, खेत के रखवालों को अपनी मचानों पर लेटे हुए किसी के मधुर स्वर सुन पड़ते हैं--

"कब होइहें इहाँ बिहनवा हो,
सुगतपुरिया के सुतल जवान ?
दुहुँ अइहैं अपनी नगरिया हो,
जस लतिका बनिके नव बिरवान ?"

●

नटराज वीरसेन

(सोलहवीं शताब्दी)

सरयू और मही सरिताओं के बीच का सारा प्रदेश बुद्ध-भक्तों से शून्य-सा हो गया था। यदि कुछ बौद्ध उपासक थे भी, तो वे अपने को बौद्ध कहने में संकोच मानते थे। इस भू-भाग के उत्तर में स्थविरों की परम्परा थी, जो थारू (थेर) कहलाती थी। इधर दसवँधी, भूमिहार, सैंथवार, (=संथागार =सैंथावार=सैंथवार), मलाव (=मल्ल), मुराव (=मौर्य), कोइरी (=कोलिय), सकवार (=शाक्य) आदि भी परम्परागत सौगत थे, किन्तु वे भी अब अपने परमगुरु तथागत को भूल चुके थे। केवल अपने शील, आचार और धर्म-कर्म से ही बुद्धानुयायी जान पड़ते थे। उन पर सिद्धों का प्रभाव प्रधान रूप से परिलक्षित होता था, यद्यपि सिद्ध-परम्परा का भी अवसान हो चुका था। कहीं-कहीं सिद्धों के चौरे और तारा आदि की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। सोलहवीं शताब्दी का यह समय बौद्ध-धर्म के लिए अन्धकार-युग बन गया था।

मल्लों का देश वीरान हो चुका था। उसके कुशीनारा और पावा जैसे प्रमुख नगर उजड़ चुके थे। लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व ही उन स्थानों के विहार यवनों द्वारा भस्मसात् कर दिए गए थे। भिक्षु-भिक्षुणियों के रक्त-प्रवाह से वहाँ की पृथ्वी रंग डाली गई थी। अब तो केवल उन स्थानों की नष्ट-भ्रष्ट दीवारें

ही अपने अंक में स्तूपों एवं विहारों को घेरे, विभिन्न मुद्राओं की बुद्ध-मूर्तियों तथा कलाकृतियों को छिपाए विश्रृंखलित हो नग्न खड़ी थीं। उनके ऊपर पीपल, बरगद, सीसम आदि के वृक्ष और मूँज, भाभड़, कुश आदि के गुम्ब उग आए थे। कुशीनारा का नाम लोग भूल चुके थे। हिरण्यवती नदी का निकटवर्ती भाग कुसुम्हीनारा (कुशीनारा) कहा जाता था। 'मुकुटबन्धन' रामाभार और 'शालवन उपवत्तन' माथाकुँवर कहलाने लगे थे। परिनिर्वाण स्तूप के चारों ओर इतने सघन गुम्ब हो गये थे कि लोग वहाँ दिन में भी जाने में हिचकते थे। जहाँ कभी भिक्षुओं के स्वरभण्य सूत्रों के मधुर शब्द होते थे, आज वहाँ शृंगालों और सूअरों के घोष हुआ करते थे।

कार्तिकी पूर्णिमा को निकटवर्ती ग्रामों के लोग माथाकुँवर में एकत्र होते थे। माथाबाबा की विशाल बुद्धमूर्ति की पूजा की जाती थी, साधु-ब्राह्मणों को भोजन-दान दिया जाता था और रात्रि-भर जागरण कर उत्सव मनाया जाता था। भजन, गीत और कथा इस उत्सव के प्रधान अंग थे।

उस रात्रि भी पूर्ण चन्द्रिका से चमकता हुआ कार्तिक का चन्द्र पूर्वी लोकधातु से आकाश में उठ चुका था। माथाबाबा की मूर्ति के निकट वस्त्र-वितान खड़ा किया गया था। सारंगी, तबला, मृदंग और भेरी के वाद्य हो रहे थे। पूजा के पश्चात् उत्सव का कार्यक्रम प्रारम्भ था। मल्ल-नृत्य हो रहा था। इस नृत्य में गीत के साथ कुन्त, शक्ति और खड्गचालन का प्रदर्शन किया जाता था। पुरुष मात्र ही इसमें सम्मिलित नहीं होते थे,

महिलाएँ भी अपने परिवारवालों के साथ उसे देखने जाती थीं। आज जनता की बहुत बड़ी भीड़ थी। सबने सुन रखा था कि नटराज वीरसेन आए हुए हैं। उनका मनोहारी नृत्य होनेवाला है। वे बहुत दिनों के पश्चात् लौटे हैं। दस-पन्द्रह वर्ष के पहले वे यहाँ से कहीं बाहर चले गए थे।

नटराज वीरसेन के रंगमंच पर आते ही मल्ल-नृत्य बन्द हो गया। वाद्य-शब्द रुक गए। करतल तथा हर्षध्वनि से सबने उनका अभिनन्दन किया। वे मंच पर बैठ गए।

"महत्ता ! (महतो !) आप का आना हम लोगों के लिए बहुत स्फूर्तिदायक है। आज की पूजा तथा उत्सव सफल हो जाएँगे।" ग्रामप्रधान दुगशरण ने करबद्ध हो विनम्र भाव से कहा।

"भाइयो ! मैं इस उत्सव में सम्मिलित होने में अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। यह उत्सव हमारे पूर्वजों का स्मरण दिलाता है। यह उन्हीं की देन है। हमारे पितामह जब तक जीते रहे, प्रतिमास पूर्णिमा और अमावस्या को माथाकुँअर आते थे और इन टीलों के बीच बड़ी देर तक बैठते थे। न जाने क्या-क्या मंत्र पढ़ते थे और घी के प्रदीप जलाते थे। उस दिन वे केवल मध्याह्न में ही अन्न ग्रहण करते थे। रात्रि में कुछ नहीं लेते थे। दूसरे दिन प्रातः साधु-ब्राह्मणों को दान देकर प्रवारणा (पारन) करते थे। वे कहा करते थे कि माथाकुंवर में हमारे भगवान् रहते हैं।" वीरसेन ने गम्भीर मुद्रा में कहा।

"तो क्या, वे लोग कार्तिकोत्सव भी मनाते थे ?" बीच में ही बात काटते हुए भद्रसिंह ने पूछा ।

"हाँ, भद्र ! कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि को सब लोग यहाँ आते थे । न जाने क्या-क्या पूजा-पाठ करते थे । दूसरे दिन प्रातःकाल यहाँ से लौटकर अपने घरवालों के हाथों में श्वेत सूत्र बाँधते थे और कहते थे कि यह मंगलसूत्र है । इससे कल्याण होगा । गाय-बैलों तक के सींगों में मंगलसूत्र बाँधे जाते थे । उस अवसर पर दसवँधी लोग आया करते थे और अपने धार्मिक गीतों से जन-समूह में संवेग प्रेरणा तथा श्रद्धा के स्रोत प्रवाहित कर देते थे । भिक्खुपुर (भिक्षुपुर) के सुगतदास अब भी हमारे घर आया करते हैं । उनके पूर्वज कभी यहीं से वहाँ गए थे । वे सब घरबारी संन्यासी थे । सुगतदास बतलाते हैं कि वे लोग घर-गृहस्थी में रहते हुए भी संन्यासियों के दस नियमों का पालन करते हैं, इसीलिए उन्हें दसवँधी कहा जाता है । उन्हें कम-से-कम एक सप्ताह के लिए गृहत्याग करना पड़ता है और भिक्षावृत्ति से निर्वाह करना होता है । आप लोग तो जानते ही हैं कि दसवँधी लोग छुआछूत नहीं मानते हैं और सबके घर का भोजन ग्रहण करते हैं । वे कच्चा अन्न नहीं लेते । उनके भी भगवान् माथाबाबा ही हैं ।"

"हाँ, महत्ता ! मेरे बाबा भी कहा करते थे कि माथाकुँवर में ही भगवान् ने समाधि ली थी । यहाँ पर उनके भक्त लोग रहा करते थे, जिन्हें तुर्कों ने मार डाला था !" चन्द्रकान्ता ने दुःख भरे भाव से कहा ।

"तो माथाबाबा हमारे इष्टदेव हैं?" सम्मिलित स्वर में कई ने पूछा।

"हाँ, भाई! माथाबाबा ही हमारे इष्टदेव हैं। हमें इन्हीं की पूजा करनी चाहिए। अच्छा, अब मैं आप लोगों का मन-बहलाव करने के लिए प्रस्तुत हो रहा हूँ।" वीरसेन ने कह कर भाव-नृत्य प्रारम्भ किया। जनसमूह उनके नृत्य में ऐसा तन्मय हो गया कि नटराज के अंग-संचालन के साथ उनके भी सिर, धड़, हाथ थिरकने लगे। सबके नेत्र नटराज पर केन्द्रित थे।

रात्रि का पहला पहर बीत चुका था। ओस से दूर्वादल भींग गए थे। चारों ओर ग्रामों में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल माथाबाबा के पास ही नटराज के घुँघरू बज रहे थे और रह-रह कर लोगों के प्रसन्नता-सूचक तुमुल शब्द हो पड़ते थे। उसी समय तीन अश्वारोही मुगल सैनिक कहीं से आ निकले। उन्होंने आते ही धमकाते हुए कहा—

"रोको यह नाच-गाना! ये बुतपरस्त बड़े बेवकूफ होते हैं।"

"क्यों जी! हम लोगों ने राज्य का क्या बिगाड़ा है? क्या अपने भगवान् की पूजा भी न करें? अपने त्यौहार भी न मनाएँ?" वीरसेन ने नृत्य बन्द करते हुए पूछा।

"बन्द करो अपनी बकबास। हम कुछ नहीं सुनना चाहते। तुम लोग बदमाश हो।" इतना कहकर एक मुगल सैनिक ने अपनी तलवार चलाई। एक बुढ़िया का सिर धड़ से अलग हो भूमि पर गिर पड़ा। लोग इधर-उधर भागने लगे। उस भगदड़ में मुगल सैनिकों ने एक ग्रामबाला को पकड़ लिया और

उसे अपनी ओर बलपूर्वक खींचने लगे। 'बचाओ, बचाओ' के शब्द सुन वीरसेन सैनिकों के पास दौड़े। तब तक सभी ग्रामवासी नौ-दो-ग्यारह हो गए थे। कोई भी साथ देने वाला नहीं था। वे झट आगे बढ़े और सैनिकों को ललकारा। वीरसेन साठ वर्ष के वृद्ध थे, फिर भी उनका शरीर मल्ल-जनपद के अन्नजल से निर्मित था। उनमें मल्लत्व जाग उठा। उन्होंने एक सैनिक की तलवार देखते-देखते ही छीन ली और सिंह की भाँति झपट पड़े। सैनिकों ने वीरसेन को जीवित ही पकड़ लेना चाहा। किन्तु वे सफल न हो सके। वीरसेन ने संकेत से ग्रामीणबाला लीला को दूर हटा, ऐसा अद्भुत प्रहार किया कि दो सैनिकों के कलेवर एक साथ ही भूमि पर जा गिरे। 'छप' शब्द के साथ उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई। तीसरा सैनिक अपने साथियों को मरा देख, अपना प्राण ले, वहाँ से चम्पत हो गया।

वीरसेन ने अश्वों को जंगल की ओर भगा दिया। सैनिकों के मृत शरीरों को पास ही टीलों में छिपा दिया और लीला को साथ ले अपने ग्राम की ओर प्रस्थान किया।

लीला बहुत डरी हुई थी। उसे भय था कि कहीं मुगल सैनिक और भी अधिक संख्या में न आ जाएँ।

"बाबा ! जल्दी भाग चलें। मैं अब घर नहीं जाना चाहती। मुझे बड़ा भय लग रहा है। वह सैनिक फिर आ सकता है।" लीला ने कहा।

"बेटी ! भय न करो। मैं अपना प्राण देकर भी तेरी रक्षा

करूँगा । मुझे माथाबाबा का आशीर्वाद प्राप्त है । मुगल सैनिक तेरा कुछ नहीं कर सकते ।''

"किन्तु, बाबा ! मैं अपने घर तो नहीं ही जाऊँगी ।''

"क्यों रे, मेरी बिटिया ! इतना भय किस लिए कर रही है ?''

"भय तो है ही बाबा ! मेरे घर वाले मुझे घर में घुसने नहीं देंगे । मुझे तुर्क ने छू लिया न, अब मैं भी तुर्क समझी जाऊँगी ।''

"नहीं बेटी ! तुझे कोई भी तुर्क नहीं समझेगा । मैं सबको समझा दूँगा ।''

"बाबा ! आप की बात कोई नहीं मानेगा । मेरे घर वाले मान भी लें, तो मुझे पूछेगा ही कौन ?''

"अच्छा, बेटी ! चल, मेरे घर चल । मैं तेरा पालन-पोषण करूँगा । मुझे तू अपना पिता समझ । मैं भी तो तेरे पिता तुल्य हूँ न बेटी ? मैं ही तेरा विवाह कराऊँगा । मेरे घर दूसरा कोई नहीं है । तू ही मेरी इकलौती बेटी, मेरे घर का दीपक होगी ।''

"बाबा ! सचमुच आप मेरे पिता हैं । आपने आज मेरे धर्म की रक्षा की है । मैं भी अब जीवन-भर आपकी सेवा करूँगी । मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं रही बाबा !''

"बेटी ! दुःखी न हो । तुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा ।''

दूसरे दिन प्रातःकाल माथाकुँवर मुगल सैनिकों से भरे

गया। ग्रामीण पकड़-पकड़ कर आने लगे और उन्हें निर्दयता-पूर्वक पीटा जाने लगा। कुछ को सैनिकों ने अश्व-टापों से रौंद डाला। त्राहि-त्राहि मच गई। अनुरुद्धपुर और युग्मवन (झुंगवा) ग्राम फूंक डाले गए, किन्तु किसी ने भी नटराज वीरसेन का पता नहीं बतलाया। मृत सैनिकों के शरीर ढूंढ़ निकाले गए। उन्हें 'गाजी' घोषित किया गया। उनके शरीर दफनाए गए और उनकी मजारें निर्मित हुईं। मुगल सैनिकों ने लौटते समय माथाबाबा की मूर्ति पर भी प्रहार किया, जिससे बाएँ हाथ का कुछ भाग टूट गया।

उधर नटराज वीरसेन ने लीला को बड़े प्रेमपूर्वक अपने घर रखा। उसे पिता का सम्पूर्ण स्नेह प्रदान किया। दोनों कभी-कभी अर्द्ध-रात्रि में माथाकुँवर जाकर अपने इष्टदेव की पूजा कर आते थे। उनके द्वारा जलाए गए दीप और चढ़ाए गए पुष्पादि को देख लोग समझते थे कि रात्रि में स्वर्ग के देवता यहाँ पूजा करने आते हैं। वीरसेन ने अपने ग्राम में भी एक छोटा-सा मंदिर बना रखा था, जिसमें माथाबाबा (भगवान् बुद्ध) की एक प्रतिमूर्ति स्थापित की थी। लीला को उस मूर्ति पर बड़ी श्रद्धा थी। वे नित्य प्रातः सायं मूर्ति-पूजा किया करती थीं। नटराज अपनी पुत्री के भक्ति-भाव से बहुत प्रसन्न थे। ग्रामवासी भी सायंकाल नटराज वीरसेन के चौपाल में एकत्र होते थे। उन्हें नटराज अपने देश-देशान्तर के अनुभव सुनाया करते थे। उन्हें सभी बाबा ही कह कर पुकारते थे। वे ग्राम में सबसे अधिक वृद्ध थे।

× × ×

"बेटी लीला ! मेरे जीवन का अब कोई ठिकाना नहीं। आज मरूँ या कल। मैं अपनी आँखों के सामने अपनी बेटी का विवाह कर देना चाहता हूँ।" वीरसेन ने प्रेम से कहा।

"बाबा ! ऐसा न सोचें। आप अभी बहुत दिन तक जीयेंगे। मेरी चिन्ता न करें।"

"बेटी ! मैंने तुझसे बिना पूछे ही तेरा विवाह पक्का कर दिया है। मैं जानता हूँ कि मेरी बेटी मेरी बात नहीं टालेगी।"

"जैसी इच्छा बाबा ! किन्तु आप भी मेरे साथ ही रहेंगे न ?"

"हाँ, बेटी ! तुझे ससुराल भेज मैं भी आ जाऊँगा।"

तीसरे दिन बड़े समारोह के साथ लीला का प्रणय बिल्वपुर के महत्तर-पुत्र विजयसिंह से हो गया। लीला को बड़े प्यार-दुलार के साथ वीरसेन ने बिदा किया। बिदा करते समय आँसुओं से भरी आँखों से देखते हुए उन्होंने लीला से कहा—"जा बेटी ! सदा सुखी रह। तेरा सौभाग्य अमर बना रहे।" लीला पिता की ओर देखती, अश्रु-प्रवाह से अपने उभय कपोलों को भिगोती शिविका में बैठ गई। वीरसेन द्वार पर खड़े हुए अपनी पुत्री की शिविका उस समय तक देखते रहे, जब तक कि वह आँखों से ओझल न हो गई।

अब वीरसेन को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। वे बिना-खाए-पिए चारपाई पर लेटे रहते थे। उनके नेत्रों के सामने सदा लीला का ही स्वरूप दिखाई देता रहता था।

"दौड़ो, दौड़ो, आग...!" ग्रामवासी चिल्लाते हुए दौड़

पड़े। तब तक वीरसेन का घर चारों ओर से आग की लपट में घिर चुका था। सबके देखते-देखते ही वह जलकर राख हो गया। नटराज वीरसेन की अस्थियों के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा !

× × ×

कुशीनगर में आज भी माथाबाबा की भग्न-मूर्ति विद्यमान है। प्रति वर्ष कार्तिकी पूर्णिमा को आसपास के हजाम वहाँ रात्रि भर रह कर पूजा करते, कथा सुनते और दान देते हैं। 'विष्णु कराह' की पूजा उसी प्राचीन कार्तिकोत्सव का विकृत रूप है, जो अब केवल हजामों तक ही सीमित है। 'गाजीमियाँ' की कथा सभी ग्रामीण सुनाते हैं। 'लीला' रामाभार की देवी बन चुकी है। नटराज वीरसेन के घर के नष्टावशेष सिसवा ग्राम के पश्चिमोत्तर में बिखरे पड़े हैं, जहाँ प्रति वर्ष कुछ प्राचीन मुद्राएँ ग्रामीणों को मिला करती हैं। किन्तु, नटराज वीरसेन विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुके हैं !

●

कुसुम्हीनारा

(१९ वीं शताब्दी)

सुखारी छपरा में सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग अपने घरों में कम्बल, रजाई आदि ओढ़कर गहरी निद्रा में सो रहे थे। माघ मास का पूर्ण शीतकर अपनी स्निग्ध शीतलता एवं रजत-चन्द्रिका से निशा-वधू का श्रृंगार कर रहा था। गाय, बैल घारियों में बँधे विश्राम की नींद ले रहे थे। सेउर की कतरी (=कोल्हू) खुल चुकी थी। कड़ाह के रस को गुड़वल पर पकाकर चाकी के गड्ढे में डाला जा चुका था। थोड़ी-सी महिया बरगद के एक पत्ते में लेकर सेउर अपने कउड़े पर बैठा चाट रहा था। उसी समय शीत से ठिठुरते हुए स्वामी परमानन्द भी आग तापने आ गये। आज उन्हें बहुत ठंढक लग रही थी। जब से वे बर्मा से लौटकर आये थे, अपने ओढ़ने के लिए कुछ भी नहीं बनवा सके थे। एक पुरानी गुदड़ी-सी दोहर थी, जिसे जयन्ती ओढ़े सो रही थी। उन्होंने आते ही फिरंगी को भी पुकारा। वह कल्हुवाड़ के एक कोने में ऊख की सूखी पत्तियों में दबा रात काट रहा था। उसे नींद आ-आकर भी चली जाती थी। स्वामी परमानन्द के पुकारते ही वह उठ बैठा और आँख मलते हुए कउड़े पर आ गया।

"कहो भाई ! आज कितना ऊख बोया गया ?"

"केवल एक बीघा स्वामीजी !" फिरंगी ने कहा।

"बोआई के समय हलवाहे रह-रहकर 'कुबेर भण्डारी की जै, कुबेर भण्डारी की जै', बोल उठते थे, इसका क्या अर्थ है भाई ?"

"कुबेर भण्डारी उत्तर दिशा में रहते हैं और वे अन्न-धन के स्वामी हैं, इसलिए हम लोग उनकी जयकार मनाते हैं ।"

"हाँ, इतना तो ठीक है, किन्तु तुम लोग और क्या जानते हो ?"

"हम लोग और कुछ तो नहीं जानते । यदि आप जानते हों तो हमें भी बतलाइये ।"

"हाँ, स्वामीजी ! कहिये न !" सेउर भी बोल उठा । तब तक उसकी महिया समाप्त हो चुकी थी । वह खोइया से हाथ पोंछकर पास आ बैठा था ।

"अच्छा सुनो । प्राचीन काल में यह सारा प्रदेश मल्ल-जन-पद कहलाता था । यहाँ मल्लों का राज्य था । वे गणतन्त्र प्रणाली से शासन करते थे । उस समय भगवान् बुद्ध इस जनपद में अनेक बार आये थे । उन्हें मल्लजनपद बहुत प्रिय था । वे मल्ल गणतन्त्र के प्रशंसक थे । उनके कुछ ही दिन पश्चात् कुशीनारा से भोगनगर तक विहारों की पंक्ति-सी बन गई । जनपद का सारा जनजीवन बौद्ध-संस्कृति से समङ्गीभूत हो गया । यद्यपि कालान्तर में बौद्धधर्म यहाँ से उठ-सा गया, लोगों की उपेक्षा और यवनों के आक्रमण से सभी विहार, स्तूप आदि ध्वस्त हो गये, किन्तु इसकी छाप अमिट बनी रही, क्योंकि वह तो

लोकधर्म बन चुका था। उस समाजव्यापी धर्म के ही ये सब अवशेष हैं।" स्वामी परमानन्द ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"कुबेर भण्डारी से क्या सम्बन्ध है स्वामीजी ?" फिरंगी ने पूछा।

"कुबेर बौद्धधर्म में उत्तर दिशा के राजा माने जाते हैं। राजा अन्नदाता होता ही है। कुबेर ही क्या, हम तुम्हें कुछ और ऐसी बातें बतलायेंगे, जो उसी प्राचीन संस्कृति की सूचना देती हैं।"

"हाँ, सुनाइये स्वामी जी !" सेउर और फिरंगी एक साथ बोल उठे।

"देखो भाई ! यह उसी का प्रभाव है कि कालीमाई के रूप में काली यक्षिणी की पूजा करते हैं और उन्हें ग्राम-देवी मानते हैं। भगवान् ने अन्तिम समय में अपना सिर उत्तर की ओर किया था, इसलिए हम भी अपने मृतक का सिर उत्तर की ओर कर देते हैं, अन्त्येष्टि-संस्कार के पश्चात् अस्थियों (=फूलों) को लेकर जो समाधि (=स्तूप) में निधान करते हैं, यह भी उसी का रूप है। खेत में नई फसल तैयार होने पर पहले साधुओं को देकर ही अपने उपभोग में लाते हैं या निकट के मठ में उसका कुछ अंश भेज देते हैं, यह भी भिक्षुओं और विहारों की स्मृति के लिए पर्याप्त है। प्रतिदिन रात्रि में लगभग आठ बजे भण्डार (=वायव्य) कोण से जो शीतल वायु के झोंके चलते हैं, उन्हें 'मोरगी हवा' कहते हैं, यह मौरवी या मौर्य देश की वायु का द्योतक है। मल्ल जनपद के निकट ही

पश्चिम में तो मौर्यों का पिप्पलिवन था और सभी मौर्य बौद्ध थे। कुछ ग्रामों में सिद्ध बाबा के चौरे बने होते हैं, यह भी सिद्धों (=तांत्रिक भिक्षुओं) के कारण ही हुआ है। उस समय जनता एवं पशु-धन की रक्षा के लिए ग्राम-ग्राम में परित्राण-पाठ हुआ करते थे, सम्प्रति वर्ष में एक बार ग्राम के सम्पूर्ण पशुओं को ग्राम से बाहर एकत्र कर मंत्र पढ़ते हैं और ग्राम-क्षेत्र को घेरकर रक्षा-सूत्र तैयार करते हैं। यह कार्य साधुओं द्वारा ही सम्पन्न भी होता है, जो पहले भिक्षुओं द्वारा होता था। भाई ! मैं कहाँ तक गिनाऊँ ऐसे पूरे समाज में ही बौद्ध धर्म व्याप्त है।"

"स्वामी जी ! आपने बहुत ज्ञान की बातें सुनाईं।" फिरंगी ने कहा।

"माथाकुँवर (=कुशीनगर) में जो मूर्ति खोदाई में मिली है, वह तो बुद्ध भगवान् की ही है न ?" सेउर ने पूछा।

"हाँ, वह भगवान् बुद्ध की ही है। वह जहाँ लेटे पड़े हैं, वहीं पर उन्होंने देह छोड़ी थी।"

"जिस समय इस स्थान की खोदाई हो रही थी उस समय मैंने भी उसमें काम किया था। यह सारा स्थान जंगल-सा पड़ा था। मन्दिर टीला जान पड़ता था, जैसा कि उसके पीछे एक टीला अभी तक है। महावीर बाबा कहते थे कि उसमें भगवान् के फूल (=अस्थि-धातु) हैं।" फिरंगी ने उत्साह के साथ कहा।

"खोदाई में तो मैंने भी काम किया था। उस समय यहाँ महावीर बाबा नहीं आए थे। तब मेरा घर झुँगवा

(= युग्मवन) में था। उस समय यहाँ से बहुत सी मूर्तियाँ, मिट्टी के खिलौने और मनुष्यों की हड्डियाँ मिलीं थीं। खोदाई करानेवाले साहब अंग्रेज थे, उनका कहना था कि कभी यह स्थान जला डाला गया था और यहाँ के भिक्षु लोग मार डाले गये थे।'' सेउर ने संवेदना प्रगट करते हुए कहा।

''हाँ, हाँ, उन्हीं साहब ने इस मूर्ति के मिलने की प्रसन्नता में माथाकुँवर से रामाभार तक एक सुन्दर जुलूस निकाला था और हम लोगों को पैसे तथा मिठाइयाँ बाँटी थीं।'' फिरंगी ने झट कह डाला।

''स्वामी जी ! माथाकुँवर में देवी-देवता भी रहते हैं। मैंने तो कई बार उन्हें घूमते हुए देखा है।'' सेउर ने कहा।

''कैसे देवी-देवता भाई ?'' स्वामी परमानन्द ने पूछा।

''वही, जिन्होंने तीस-चालीस वर्ष पहले लोगों को बचाते हुए अपने प्राण दे दिए थे। वे देवी-देवता होकर यहीं रहते हैं। वे सबकी रक्षा करने वाले हैं। कई बार रात्रि में मेरे सामने से जाते-जाते अदृश्य हो गए हैं।''

''वे कौन थे भाई ?''

''हमारे ही ग्राम में जयसिंह नामक एक विद्वान् रहते थे। उन्होंने काशीजी में जाकर वेद-शास्त्र पढ़ा था। सभी तीर्थों की यात्रा भी की थी। पूरे पन्द्रह वर्ष के पश्चात् जब सब विद्या में निपुण होकर घर लौटे, तो माता-पिता ने बड़े समारोह के साथ उनका विवाह कर दिया। उनकी पत्नी का नाम पद्मादेवी था। वह सचमुच देवी थी। पति के अनुरूप दुलहिन मिली थी।

दोनों प्रातः सायं रामाभार जाते थे। वहीं कुसुम्हीनारा (हिरण्यवती नदी) में स्नान करते थे। लौटती बार माथाकुँवर के कोट में जाकर घंटों पूजा करते थे। उन्हें पूजापाठ के आगे भोजन-छाजन की भी चिन्ता नहीं रहती थी। विवाह हुए सात-आठ वर्ष व्यतीत हो गए। किन्तु उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। जब लोग उनसे पूछते—"क्या आपको सन्तान नहीं हैं ?" तब कहा करते—"अरे भाई ! हम तो संसार के दुःखों में आ ही पड़े हैं, फिर दूसरे जीव के दुःख में पड़ने का कारण क्यों बनें ?" उनका उत्तर सुन, सब लोग चुप हो जाते थे। जहाँ कहीं कथा-भागवत होती थी, वहाँ वे अवश्य बुलाये जाते थे। ग्रामवासियों की उनपर बड़ी श्रद्धा थी। लोग उन्हें ब्रह्मचारीजी कहा करते थे। बहू भी महिलाओं में सम्मानित थी। कोई भी घर ऐसा न था जहाँ से उसका बुलावा न आता हो, किन्तु वह पतिपरायणा पत्नी किसी के घर नहीं जाती थी।"

"आगे क्या हुआ भाई ?" उत्सुकतापूर्वक स्वामी परमानन्द ने पूछा।

"एक दिन प्रातःकाल ब्रह्मचारीजी पद्मादेवी के साथ नदी पर स्नान करने गए थे। वर्षा-ऋतु थी। नदी में बाढ़ आई हुई थी। रामाभार, कुसुम्हीनारा, लमुहा, लमुही सब एक हो गये थे। रकसहवा-नाला भी उमड़ पड़ा था। आजकल कुसुम्हीनारा में वर्षा में भी पानी कम रहता है, अब वह छोटी हो गई है, किन्तु उन दिनों उसमें गर्मी में भी पानी रहता था। वर्षा में तो वह महानदी का रूप धारण कर लेती थी। कोई भी बिना नाव,

इस पार से उस पार नहीं जा सकता था। प्राय: व्यापारी लोग हिमालय की तराई से साखू, देवदारु आदि के बेड़े बड़ी और छोटी गण्डक द्वारा लाकर कुसुम्हीनारा से खनुआ (खाणुका) की धारा में कर देते थे और आगे बढ़ जाते थे। यहाँ से भी सीसम, बाँस आदि बेड़ों में बाँध लेते थे। नाव द्वारा भी अन्न का व्यापार होता था। थरुहट और त्रिवेणी का धान इसी मार्ग से बढ़उ और नवतप्पी में पहुँचता था।

नदी जाने पर पहले पद्मादेवी ही स्नान करती थी। उसके बाहर आने पर ब्रह्मचारोजी पाँच डुबकियाँ लगाया करते थे। उस दिन ज्यों ही ब्रह्मचारीजी नदी में उतरे, लोगों के रोने-पीटने का तुमुल शब्द सुनाई दिया। "अरे बचाओ! अरे ..!!" पद्मादेवी ने भी सुना। दोनों ने देखा कि सामने बीच धार में लट्ठों का एक बेड़ा चक्कर खा रहा था। उसपर तीन-चार स्त्रियाँ और पाँच-छ: पुरुष बैठे हुए डूबने के भय से रो-पीट रहे थे। ब्रह्मचारीजी और पद्मादेवी के देखते-देखते ही बेड़ा आँखों से अदृश्य हो गया! बेड़े पर बैठे सभी स्त्री-पुरुष नदी की धार में विलीन हो गये। करुणार्द्र हो ब्रह्मचारीजी ने छलाँग मारी और पानी की तेजी को हाथों से चीरते बेड़े के पास पहुँच गए। वे आगे बढ़ना ही चाहते थे कि बेड़े ने पानी के वेग से ऐसा उलटा खाया कि उसकी चपेट में वे आ गए और फिर ऊपर नहीं आ सके! पद्मादेवी भी अपने पति को "आती हूँ, घबराओ नहीं" कहकर छलाँग मारते ही नदी में कूद पड़ी। उसने अपने प्राण-प्रिय पति को डूबते हुए देखा और उधर ही बढ़ चली, किन्तु

हाय ! बेचारी वह देवी भी बेड़े के पास पहुँचते ही तिरोहित हो गई !" कहते-कहते सेउर की आँखें छलछला आईं ।

"अच्छा, मैं समझा, चार वर्ष पूर्व रामाभार की खोदाई होते समय थोड़ी दूर पर तालाब में तीन हाथ के नीचे साखुओं के लट्ठे मिले थे, जो एक ही पास थे, कोई छः लट्ठे रहे होंगे। उनके बीच में ही दबे हुए दो नर-कंकाल भी पाए गये थे। यह वही बेड़ा रहा होगा और ब्रह्मचारीजी तथा पद्मादेवी के अस्थि-पञ्जर···।" फिरंगी ने आश्चर्य से कहा।

"तो वे ही लोग माथाकुँवर में देवी-देवता होकर रहते हैं?" स्वामी परमानन्द ने पूछा।

"हाँ, स्वामीजी, वे ही लोग हैं। रात्रि में श्वेत-वस्त्र पहने हुए घूमा करते हैं। ब्रह्मचारीजी खड़ाऊँ पर रहते हैं और देवीजी हाथ में पुष्प-माला लिये रहती हैं। धन्य हैं वे लोग, सदा माथाकुँवर के कोट की रक्षा करते हैं।" सेउर ने कहा।

"ग्राम-महिलाएँ उनके गीत भी तो गाती हैं।" फिरंगी ने कहा।

"अवश्य गाती होंगी, बड़े धर्मात्मा थे। ऐसे लोगों के पुण्य-प्रताप से ही पृथ्वी टिकी है।" स्वामी परमानन्द ने कहा।

पूरब में शुक्र-तारा निकल चुका था। मुर्गे शब्द करने लगे थे। ग्राम की महिलाएँ घर से बाहर निकलने लगी थीं। लोगों के उठने के छिटफुट शब्द सुनाई पड़ रहे थे। और इस कहानी के तीनों पात्र कउड़े पर बैठे आग ही ताप रहे थे!

●

सिद्धबाबा

(बीसवीं शताब्दी)

सन् ३४ के विनाशकारी भूकम्प के समय गोरखपुर जिले में अनेक दुर्घटनाएँ हुई थीं। कुछ अद्भुत शक्तियाँ भी उसी समय उठ खड़ी हुई थीं। अनेक कुँओं का पानी सूख गया था। घर गिर पड़े थे। नावों के भी नदी में डूब जाने के समाचार मिले थे। कुशीनगर के पास एक ग्राम का कुँआ ऊपर की ओर उमड़ कर बहने लगा था। ग्रामवासी डर गये थे कि कहीं ग्राम न बह जाय। उसी वर्ष नारायणी में इतनी प्रबल बाढ़ आयी कि उसके जल से छोटी गंडक भी फैल कर पूर्व की ओर बहने लगी। उसका जल हतवा ग्राम से होता हुआ बाबा मंगलदास की कुटी के सामने खनुआ में गिरने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि गंडक की धारा खनुआ में ही आ मिलेगी और गंडक अपनी दिशा बदल देगी। उस समय हतवा में सूखी भूमि पर भी मछलियाँ कूदने लगीं।

एक दिन उत्तर दिशा के एक तालाब में 'सूम' लगी। देखते ही देखते तालाब का सारा जल सूख गया और वह बादल के रूप में ऊपर उठ गया। थोड़ी देर में बादल पीछे की ओर मुड़ा। मूसलाधार वर्षा होने लगी। वर्षा-जल के साथ ही सीप, घोंघे और मछलियाँ भी गिरीं। हतवा ग्राम में 'बरम बाबा' और 'डीह बाबा' की पूजा की गयी। चौरे बाँधे गये।

'गौमाला' मनाने का विचार किया गया। ग्रामवासियों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चन्दा दिया। लगभग तीन सौ रुपये एकत्र हो गए। बाबा मंगलदास ने प्रत्येक घर के लिए एक-एक परई पर कुछ मंत्र लिख कर दिये, जिन्हें गृहस्वामियों ने बीच में छेद कर रस्सी डाल, अपनी-अपनी घारियों में लटका दिये, जिनसे उनकी गौवों को किसी प्रकार का रोग न हो। रात्रि में लगभग ८ बजे हतवा ग्राम के सभी पशु ग्राम से उत्तर एक खेत में एकत्र किये गये। वहाँ 'डीह बाबा' की पूजा की गयी, खप्पर चढ़ाया गया। पशुओं को पाँच अंगुलियों के चिह्नों से चिह्नित किया गया और कुछ लोगों ने खप्पर के साथ ग्राम-क्षेत्र की प्रदक्षिणा भी की।

जब हतवा ग्राम की गौमाला का समाचार सिसवा ग्राम में पहुँचा, तब वहाँ भी मंगलदास बुलाये गये तथा गौमाला का आयोजन किया जाने लगा। चन्दा एकत्र हुआ। आटा, दाल, घी, चावल, रामरस और चीनी भी तुलसीदल भेज कर बाबा मंगलदास ने जमा कर लिया। मुखिया हरदत्त सिंह की दालान में एक बैठक हुई और निश्चित हुआ कि पूर्णिमा की रात्रि में ग्राम के पश्चिमोत्तर दिशा में डीह बाबा के स्थान के पास गौमाला की पूजा होगी। गौमाला के लिए लोगों में बहुत ही उत्साह था, क्योंकि पशुओं में अनेक संक्रामक रोग फैले हुए थे, जिससे बहुत से पशु मर गये थे। लोगों में ऐसा विश्वास था कि गौमाला से ही पशुओं के सारे रोग दूर हो जायँगे।

'महतो, मैंने कल रात में एक विचित्र स्वप्न देखा। उसे

कहने में मुझे डर लग रहा है। मैंने अब तक किसी से नहीं कहा है।' भय और आशंका के स्वर में हरपाल ने कहा।

'कहो, हरपाल ! क्या स्वप्न देखा ? स्वप्न से डर कैसा ? जो देखा है सब कह डालो, न !'—मुखिया हरदत्तसिंह ने दृढ़ता के स्वर में कहा।

'हाँ, हाँ, डर किस बात का ? कहो न !'—कई लोगों ने एक साथ कहा।

'अच्छा, महतो, मैं कह रहा हूँ, सुनिये। मैं कल रामपुर गया हुआ था। कुछ आवश्यक गृहस्थी के सामान लेने थे। वहाँ से लौटते समय सामान की गठरी लिये पूर्व टोले के बरगद के पास से होकर गुजरा। शाम हो चली थी। चारों ओर अँधेरा बढ़ता जा रहा था। मैंने बरगद के पास पहुँचते ही देखा कि उसके नीचे जड़ से सट कर पूर्व मुख बैठे एक संन्यासी सुल्फा सुलगा रहे थे। सुल्फा के प्रसाद के लिए मैं भी उनके पास गया और प्रणाम कर बैठ गया। उन्होंने कहा—'बच्चा, बैठो और प्रसाद पाते जाओ।'

वे अद्‌भुत् व्यक्ति लगते थे। मुझे ऐसा जान पड़ा कि बरगद के देवता ही उतर कर बैठे हों। उनके शरीर पर पीताम्बर था। सिर के बाल घुटे हुए थे। कान छिदे थे उनमें मोटी-मोटी बालियाँ लटक रही थीं, पास में ही धूनी रम रही थी, जहाँ 'दसपन्दाह' गड़ा हुआ था।

'बच्चा, लो यह प्रसाद ग्रहण करो। कहते हुए संन्यासी जी ने सुल्फा मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने दो ही कश खींचे और चलने

को उत्सुक हुआ। उन्होंने धूनी से एक चुटकी भभूत उठा कर दी। उसे मैंने श्रद्धा से अपने गमछे के एक खूँट में बाँध लिया और प्रणाम कर चल दिया। अभी चार-पाँच कदम ही आगे बढ़ा था कि बरगद पर एक अद्‌भुत प्रकाश दिखाई दिया। मैंने पीछे मुड़कर देखा तो न वहाँ संन्यासी जी थे, न धूनी और न तो दसपन्दाह ही।

मैं तेजी से पैर बढ़ाता घर आया। किसी से भी मैंने यह घटना नहीं कही। भोजनोपरान्त रात में जब सोया तो फिर क्या देखता हूँ कि वही संन्यासीजी मेरे पास आये हुए हैं। मैंने झट उठकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने अपना दाहिना हाथ उठाकर मुझे आशीर्वाद दिया और कहा—'देखो बच्चा, मैं तुमसे एक बात कहने आया हूँ। तुम लोग कल गौमाला मनाने वाले हो। उससे क्या होगा? तुम लोगों की रक्षा तो मैं करूँगा। मेरी पूजा करो। मेरे स्थान पर मेला लगाओ और इसका प्रचार करो। कोई भी संक्रामक रोग तुम्हारे ग्राम में नहीं फैलेगा। तुम जानते हो न, मैं सिद्धबाबा हूँ, सैकड़ों वर्षों से तुम्हारे पूर्वज मेरी पूजा करते आ रहे हैं, किन्तु तुम लोग अब मुझे भुला देना चाहते हो। हाँ, मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ, कान देकर सुन लो। यदि मेरे सम्मान में अन्तर पड़ा और गौमाला हुई तो ग्राम मटियामेट हो जायगा। सोनरा नदी मुर्दों से पट जायगी। कोई मुर्दा उठाने वाला भी नहीं मिलेगा। बस, मैं चलता बना।'

इतना कह कर वे चुप हो गये। मैं कुछ कह भी नहीं

पाया। मैं उठ बैठा, चारों ओर देखा, वहाँ कोई न था। मेरी आँखों में उनका रूप अब भी नाच रहा है। मैं रात भर सोया भी नहीं हूँ। यह क्या बात है ?'

'वे सिद्धबाबा ही थे'—सुक्खू ओझा ने झट उत्तर दिया।

'कैसे ओझा ?'—हरदत्तसिंह ने पूछा।

'हम लोग ओझा हैं। देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। हम सब कुछ जानते हैं। इन देवताओं में डाकिनी-पिशाचिनी, योगिनी, सिद्ध और सैय्यद बड़े ही जगता होते हैं। कौन ऐसा ओझा या सोखा होगा, जो इन्हें न पूजता हो ? मैं तो सदा ही अपने ग्राम के सिद्धबाबा को प्रति वर्ष आश्विन और चैत्र में 'जेवनार' चढ़ाता हूँ। उन्हीं के आशीर्वाद से तो मैं जीता भी हूँ, अपना पेट पालता हूँ। आज उनका आशीष मेरे सिर से हट जाय तो मेरे बच्चे भूखों मर जायँ।'—सुक्खू ओझा ने बड़े गर्व से कहा।

''अच्छा, तो हम लोग सिद्धबाबा की ही पूजा करें। गौमाला भी अपने ग्राम की पूजा है, किन्तु बहुत दिनों से हम लोग उसे छोड़ चुके हैं। इस समय सिद्धबाबा को प्रसन्न करना आवश्यक है''—टहलूराम ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा।

सब लोगों ने टहलू की बात मान ली। भला, सिद्धबाबा की चेतावनी के विरुद्ध किसमें कुछ कहने का साहस था। सिद्धबाबा के प्रकट होने का समाचार बिजली की तरह चारों ओर फैल गया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही बरगद के पास नर-नारियों की भीड़ लग गयी। कोई कड़ाही चढ़ाने लगा, कोई

अपने नवजात शिशु का मुण्डन कराने लगा, कोई सत्यनारायण-कथा सुनने लगा, तो कोई अपने घर के भूतों को भगाने के लिए ओझैती कराने लगा। बरगद के नीचे एक मेला-सा लग गया। खीर-पूड़ी के चढ़ावे से कुछ लोगों की बन आयी। जेवनार का भी भोग वही लगाते थे। चढ़ाने वालों को थोड़ा-थोड़ा प्रसाद मात्र मिल जाता था।

●

"मैं नहीं छोड़ूँगा, इसके साथ ही जाऊँगा। इसने मेरी पूजा नहीं दी है"––विन्ध्याचल की स्त्री फेंकनी ने बार-बार तेजी से अपना सिर घुमाते और हिलाते हुए कहा।

"क्यों नहीं छोड़ोगे ? तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा।" सुक्खू ओझा ने चुटकी भर राख फेंकनी के मुख में डालते हुए कहा। बस, क्या था, वह शान्त हो बैठ गयी। भूत भाग गया। इस बात का इतना अधिक प्रचार हुआ कि दूर-दूर के स्त्री-पुरुष अपने भूत छुड़ाने के लिए सिसवा आने लगे। कोढ़ी और रोगी भी अपने रोग को दूर करने के लिए आ जुटे। कोई सन्तान की कामना से, कोई विवाह की कामना से, कोई परदेशी को बुलाने की इच्छा से और कोई अपने घर की सुख-समृद्धि की चाह से सिद्धबाबा के चौरा पर आ पहुँचा। सोखा-ओझा, साधु-फकीर, डाइन-टोनहिन और नेटुओं (नटों) की भी एक अच्छी भीड़ आ जुटी थी। सोखायी-ओझाई, पूजा-पाठ और चढ़ावे-उतारे का ही दृश्य वहाँ प्रातः से सायं तक दिखाई देता था। केवल रात्रि में ही लोग चूल्हा फूँकने की धुन में रहते थे। सिद्धबाबा और

सिसवा के इस मेले के सम्बन्ध में ग्राम्यगीत भी तैयार हो गये थे। बिरहा, लचारी, आल्हा प्राय: सभी छन्दों में सिद्धबाबा के भक्तजन रात्रि में गीत गाते देखे जाते थे। दिन में भी मार्ग चलते सिद्धबाबा की ही चर्चाएँ होती थीं। सिसवा ग्राम के सिद्धबाबा जिले भर में प्रसिद्ध हो गये थे।

"क्या महतो, आप जानते हैं? ठग कुर्मी की लड़की सुखिया तो डाइन है डाइन! मैंने कल ही सिद्धबाबा के साथ पर उसे 'खेलते' हुए देखा। हमारे ग्राम में गत वर्ष बच्चे-बूढ़े सब मिलाकर दस व्यक्ति मर गये। ऐसा कभी नहीं होता था। मेरा अपना अनुमान है कि यह सब सुखिया की ही करतूत है। अब भी हम लोगों को सम्हलना चाहिए। अपनी जवान लड़की को ठग कहीं ब्याह भी नहीं देता!'''लक्ष्मण ने आश्चर्य से कहा!

"यदि यह सत्य है तो हमें इधर शीघ्र ध्यान देना चाहिये, नहीं तो हतवा बरबाद हो जायगा। क्यों नहीं हम लोग ठग को बुला कर समझा दें कि वह अपनी लड़की को शीघ्र कहीं ब्याह दे और उसे यहाँ से सदा के लिए बिदा कर दे। यदि वह उसे यहाँ रखेगा तो हम लोग उसे पूरे परिवार के साथ ही यहाँ से मार कर भगा देंगे। उसने ही हमारे प्यारेलाल को मारा होगा।"—एक ने कहा।

'हमने सुना है कि डाइनें रात में श्मशान में जाकर मरे हुए बच्चों को भूमि से निकाल कर नचाती-खेलाती हैं,'—दूसरे ने कहा।

'हाँ, मैंने यह भी सुना है कि उन्हीं से डाइने दूसरों के घर

बनी हुई रोटी और अन्न तक को अपने घर मँगा लेती हैं''--तीसरे ने कहा।

'अरे भाई, मेरे दादा कहा करते थे कि कामरू-कमच्छा (कामरूप-कामाख्या) की डाइनें तो आदमी को तोता, बैल आदि बनाकर भी रख लेती हैं और जब चाहती हैं, उन्हे फिर आदमी बनाकर सारे काम कराती हैं। अस्थि-पंजर को भी आदमी बनाकर दौड़ाती हैं। ये डाइनें बड़ी भयानक होती हैं''--चौथे ने कहा।

× × ×

''मेरी प्यारी रानी, मैंने तुम्हें अपने किसी पूर्वजन्म के पुण्य-प्रताप से पाया था। यह मेरा परम सौभाग्य था कि ग्राम से बाहर उस अन्धेरी रात्रि में जब ग्रामवासियों ने तुम्हारे इस गोरे शरीर पर बेंत लगाकर ग्राम से निकाल दिया था। तुम्हारे पिता को न जाने कहाँ लापता कर दिया था, तब मैं बाजार से आता हुआ तुम्हें मिला था। मैंने भी पहले समझा कि मार्ग में कोई चुडैल बैठी सिसक रही है, किन्तु तुम्हारे पास आने पर सारे सन्देह दूर हो गये। अब तो मैंने इन आठ वर्षों के बीच देख लिया है कि तुम साक्षात् देवी हो, देवी। तुम्हें ग्रामवासियों ने डाइन कहकर और ग्राम से बाहर निकाल कर अपनी लक्ष्मी खो दी। जानती हो क्या हुआ? हतवा का वह लक्ष्मण गोंड़ तुम्हारे निकाले जाने के तीसरे दिन मुख से खून फेंककर मर गया था। लोग कहते थे कि सिद्धबावा ने उसे सजा दे दी''--बलबीर ने सुखिया के हाथों पर अपने दाहिने हाथ को रखते हुए कहा।

"क्या, सचमुच लक्ष्मण मर गया ? नीच लक्ष्मण ! वह मुझसे विवाह करना चाहता था। मैं क़ुर्मिन और वह काला-कलूटा गोंड़। उसी की जालसाजी में मेरी और मेरे पिता की दुर्गति की गयी। मेरी कौन सुनने वाला था ? मेरे पिता ने भी लाख समझाया, किन्तु मुखिया के दिमाग को तो भवानी माई खा गयी थीं,"—सुखिया ने आवेश में आकर कहा।

'ऐसी बात ?'

"हाँ, मेरे स्वामी, मैं सत्य कह रही हूँ, आप देवता हैं। आपने मेरे जीवन का उद्धार किया और मुझे अपना कर अमित सुख प्रदान किया। मैं किसी भी जन्म में आपके इस ऋण से उऋण नहीं हो सकती। सदा आपकी ही रहूँ और सेवा कर कृतकृत्य होऊँ। बस, अब तो यही प्रार्थना है।"

सुखिया ने आँखों से आँसू टपकाते हुए अपने सिर को बलबीर के कन्धे पर टिका दिया।

'प्यारी, मैं गाँधी जी का भक्त हूँ। मैंने उनके दर्शन सेवाग्राम में किये थे और वहीं उपदेश भी सुना था। मैं क्षत्रिय हूँ और तुम कुर्मिन हो, इसमें कोई भी भेद नहीं ! ये तो मनुष्यकृत भेद हैं जिन्हें लोगों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए बना लिया है। सभी मनुसन्तान हैं। सब समान हैं। किसी प्रकार का भी भेद मानना मनुसन्तान का अपमान करना है।"

"ठीक कहते हैं, स्वामी।"

"देखो इस समय गांधीजी माता कस्तूरबा के साथ आगा खाँ के महल में नजरबन्द कर दिये गये हैं। उनके भक्तों ने

अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांति कर दी है। स्थान-स्थान पर पुल तोड़े जा रहे हैं। स्टेशन और थाने जलाये जा रहे हैं। अंग्रेज बन्दूक की गोली से भारत के नौनिहाल तरुणों को उड़ाते जा रहे हैं। गांधीजी मेरे धर्म गुरु और धर्मपिता हैं। मुझे भी उनके लिए कुछ करना है। रानी, मुझे आज जाने दो। मैं भी खनुआ का पुल तोड़ने जाऊँगा और आज की ही रात मैं पास के थाने में भी आग लगा दूँगा। तुम निश्चिन्त रहना। मैं प्रातः होते ही घर लौट आऊँगा। सिद्धबाबा मेरी सहायता करेंगे, गाँधीजी का आशीर्वाद मेरे साथ है।"

× × ×

"भन्ते, मैं अनागरिका होना चाहती हूँ। मुझे भी तथागत को शरण लाइये। मैंने इस छोटी-सी उम्र में जीवन के बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं। अब तो शान्तिपूर्वक ध्यान-भावना में ही शेष जीवन बिताना चाहती हूँ।' सुखिया ने प्रार्थना करते हुए कहा।

"उपासिके, तुम्हारे घर और कौन-कौन हैं? क्या सबकी सहमति तुमने ले ली है?" भिक्षु प्रज्ञारत्न ने पूछा।

"भन्ते, मेरे पति सन् ४२ में अंग्रेजों की गोली के शिकार हो गये थे। मेरे देवता सदा के लिए मुझसे उसी समय बिछुड़ गये थे। मेरा दूसरा कोई नहीं है। मैं चाहती हूँ कि अपने घर को बुद्धविहार बना दूँ।"

"तुमने भगवान् बुद्ध को कैसे जाना है? यहाँ तो इस समय अज्ञान ही अज्ञान फैला हुआ है। कुशीनगर की बुद्धमूर्ति को कोई

'माथाबाबा' कहता है तो कोई बुद्धकुंवर। देखो न, रामाभार के स्तूप को बुद्धकुंवर की बहिन का स्थान कहते हैं और काली-स्वरूप मानकर कड़ाही चढ़ाते हैं। कैसी विचित्रबात है। कुछ वर्ष पूर्व तक वहाँ छागों की बलि भी दी जाती थी। पुरातत्व विभाग के प्रतिबन्ध के कारण अब वहाँ हिंसा बाद हो गयी है।"

"भन्ते, मैं अब बहुत कुछ जानती हूँ। पहले मैं डाइन मानी जाती थी, निरक्षरा थी, अभागिनी थी, कुजाति थी, किन्तु अब मैंने गांधी जी की कृपा से कुछ पढ़-लिख लिया है। धर्म-अधर्म समझने लगी हूँ। सिद्धबाबा के माहात्म्य से भी भली प्रकार परिचित हो गयी हूँ। मैं यह जानती हूँ कि भगवान् बुद्ध के शिष्य ही पीछे चलकर सिद्ध कहलाने लगे थे। चौरासी सिद्धों के नाम अब भी प्रसिद्ध हैं। पहले मैं सिद्धबाबा की उपासिका थी, किन्तु यह नहीं जानती थी कि मैं अप्रत्यक्ष रूप में भगवान बुद्ध के भक्तों की ही पुजारिन थी और अब जब सब कुछ जान गयी हूँ तब तो दूसरे की शरण जाने की आवश्यकता ही नहीं रही।

× × ×

श्रावण मास की बात है। ग्रामवासी महिलाएँ रात भर कजली गाती रहीं। सुखिया भी अपने घर में बैठे बहुत देर तक कजली सुनती रही। वह एक ही आसन पर बैठी रही। देखने वाले समझते थे कि वह जाग रही है, किन्तु प्रातः होने पर जब कजली का स्वर बन्द हुआ और ग्रामवधूओं ने उसे जगाने का प्रयत्न किया तो देखा कि वह बैठी हुई भी सदा के लिए सो चुकी

थी। उसके हाथ में एक छोटी-सी लाकेट थी, जिसमें छपा हुआ बुद्ध-चित्र जड़ा था। लोगों ने यह भी देखा कि सिद्धबाबा का वह विशाल बरगद न जाने कब का जड़ों के सहित उखड़कर धराशायी हो गया था और उसकी जड़ से लाल रंग का दूध बह रहा था।

आज न सुखिया है और न सिद्धबाबा ही, किन्तु दोनों के अवशेष अब भी सिसवा ग्राम में विद्यमान हैं।

●

रामरत्ती

(बीसवीं शताब्दी)

चैत का महीना था। गेहूँ की फसल कट चुकी थी। खलिहानों में डाँठ की गढ़ी लगी हुई थी। कुछ लोग दँवरी करने की चिन्ता में थे। कुछ यों ही पीट-फटक कर घर का काम चलाते थे। इस वर्ष फसल अच्छी हुई थी। दाने काफी गदाये हुए थे। जिनके पास दो बीघा भी खेत था, वे तीन-चार महीने भर के लिए अन्न पाने की प्रसन्नता में थे। अचानक एक रात खलिहान में आग लगी और देखते ही देखते डुमरी ग्राम में लोगों का अन्न जलकर भस्म हो गया। ग्राम में कुहराम-सा मच गया। लोगों का अनुमान था कि किसी शत्रु ने ऐसा किया है, किन्तु यह कोई नहीं जान पाया कि किसने यह जघन्य कार्य किया। रामरत्ती ने देखा कि उसकी गढ़ी धाँय-धाँय करके जल रही है। वह कर ही क्या सकता था। उस रात पुरवा भी इतनी तेज बह रही थी कि किसी की बुद्धि काम नहीं करती थी। डर तो यह था कि कहीं आग का कोई लुक् ग्राम में किसी छप्पर पर न जा गिरे। उसने खड़े-खड़े देखा कि उसकी गाढ़ी कमाई की राशि भस्म हुई जा रही थी। वह झट घर गया और काली माई के लिए कड़ाही चढ़ाने के लिए घी लाया। उसने उसे उस धधकती हुई आग पर छोड़ दिया और दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगा—"हे अन्न महाराज! आप रुष्ट मत होइयेगा। इसमें मेरा दोष नहीं है। जसने आपको जलाया है, उसका अवश्य विचार कीजियेगा।"

"भाई रामरत्ती ! अब यह क्या कर रहे हो ? जाने दो। पश्चात्ताप करने से क्या होगा ? अब तो आधे वर्ष की कमाई चली ही गई।" नन्हकू ने सान्त्वना देते हुए कहा।

"महतो ! मैं बड़ा ही अभागा हूँ। हमारे ग्राम के सब लोगों की गढ़ी जली है, किन्तु और लोगों को किसी बात की कमी नहीं है। मैं ही एक ऐसा निर्धन हूँ कि दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाऊँगा।"——कहते-कहते रामरत्ती का गला भर आया। उसने आँसू पोंछते हुए अपनी दुःख गाथा जारी रखी——"आप जानते ही हैं कि मेरे घर केवल दो ही जने हैं। मेरी पत्नी सोलह वर्ष पहले ही परलोक सिधार गई थी। लड़की और मैं दो ही तो हैं। अब रमदेइया भी सयानी हो गई है। सोलह वर्ष की लड़की का विवाह मैं अभी तक नहीं कर पाया हूँ। सोचा था कि मजदूरी आदि करके खाने-पीने का काम चला लूँगा और गेहूँ, सरसों, तीसी आदि बेचकर रमदेइया का विवाह कहीं कर दूँगा, किन्तु महतो ! मैं भाग्य का मारा क्या करूँगा, समझ में नहीं आता। खेत भी तो मेरे पास तीन ही बीघा है। दो वर्ष का भैयाजी का लगान भी नहीं दे पाया हूँ।"

"घबराओ नहीं, रामरत्ती ! सब हो जायेगा। संसार में जन्म लिये हैं तो इन सब विपत्तियों का सामना करना ही होगा। घबड़ाने से काम नहीं चलेगा।"

(२)

"प्रिय ! मैं आपको पाकर बहुत प्रसन्न हूँ। मैंने बचपन में ही सोचा था कि किसी 'कला' (भारतीय) से विवाह करूँगी

और उसके साथ भारत जाकर शुद्धभूमि (तीर्थस्थान) का दर्शन करूँगी। मेरी वह इच्छा पूरी हो गई। यह मेरे किसी पूर्वजन्म के पुण्य का ही उदय था जो आप मुझे श्वेदगौं पैगोडा के पास मिले और एक दूसरे को देखते ही आकर्षित हो गए। ऐसा लगता है कि हम दोनों सदा के साथी हैं। पूर्व जन्म में भी हम एक ही साथ थे और अगले जन्म में भी हम एक ही साथ रहेंगे। आप मुझे कभी छोड़ेंगे नहीं न?'' माटे ल्हांई ने रामरत्ती के कन्धे पर अपने सिर को टिकाते हुए उसके हाथों को अपने हाथों में रख कर प्रमदा-स्वर में कहा।

''प्यारी माटे! तुम समझती हो कि मैं धनी हूँ। भारत में मेरे घर पर खेती-बारी होगी और मेरे परिवारवाले होंगे। इसीलिए तुम बार-बार भारत चलने की बात कहती हो। मैंने जब भी तुमसे कहना चाहा है, तुमने टाल दिया है, किन्तु मैं तुमसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहता। तुम मेरी देवी हो। मेरे सुख-दुख की संगिनी हो।'' रामरत्ती ने माटे ल्हांई के मुख को अपनी ओर करते हुए कहा।

"कहिये न! मैं तो सुनना ही चाहती हूँ।''

"किन्तु एक वादा करो कि तुम मेरी कहानी सुन कर मुझे न छोड़ोगी!''

"ऐसा क्यों कह रहे हैं? क्या मैंने छोड़ने के ही लिए श्वेदगौं के पास आपसे प्रतिज्ञा की थी? बर्मी लड़कियाँ कृतघ्न नहीं होतीं, किन्तु न जाने क्यों भारतीय पुरुष ही उन्हें छोड़ कर अपने देश भाग जाते हैं और वे यहीं बिलखती रह जाती हैं।

मुझे तो सदा यही भय लगा रहता है कि कहीं आप भी मुझे छोड़ न दें ।"

"ऐसा नहीं होगा माटे ! इसे पक्का मानो । मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ । मैं भी उस देश का रहने वाला हूँ, जहाँ माथाकुँवर बाबा हुए थे और जहाँ सदा बर्मी लोग पूजा करने जाते हैं । मैं तुम्हें एक बार अवश्य वहाँ ले चलूँगा ।"

"क्या आपने इतनी उम्र तक बिवाह नहीं किया था ?"

"मैं यही सब तो तुम्हें सुनाना चाहता हूँ । मेरा विवाह हुआ था । मेरी पत्नी बहुत सुन्दर थी । मेरा जब विवाह हुआ और मेरी पत्नी घर पर आई, तब मेरे माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए, उसके रूप-रंग को देख कर । वह सुशील भी थी, किन्तु दुर्भाग्य कि उसके आने के बाद एक वर्ष के भीतर ही मेरे माता-पिता स्वर्ग सिधार गए । मेरे पास पैसे नहीं थे । पाँच बीघा खेत था । दो बीघा रेहन रख कर श्राद्ध किया । जिनको रेहन लिखा था, उन्होंने न जाने कैसे पटवारी से मिलकर हमेशा के लिए मेरे उन खेतों को अपना कर लिया । उसी साल रमदेइया का जन्म हुआ और मेरी प्यारी पुष्पा भी चल बसी ।"

"रमदेइया क्या आपकी पुत्री है ?"

"हाँ, माटे ! वह मेरी पुत्री है । वह अपने घर सुखी रहे । उसे मैंने चार महीने की उम्र से ही बकरी का दूध पिलाकर पाला-पोसा था । सयानी होने पर उसके विवाह के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे । बहुत चाहा कि कुछ जमा कर कपड़ा-लत्ता खरीद लूँ और उसका विवाह कर दूँ, किन्तु जहाँ भी लड़का

देखने जाता था, दो सौ रुपये से कम दहेज पर कोई तैयार ही नहीं होता था। क्या करता, सयानी लड़की को क्षत्रिय-ब्राह्मणों के ग्राम में रखना ठीक नहीं था। मैंने दो बीघा खेत चार सौ रुपये में बेंच दिया और अपनी लाड़ली बेटी का विवाह धूमधाम से कर दिया। विवाह ज्योंही समाप्त हुआ, जमींदार के प्यादे आ धमके और लगान के लिए तंग करने लगे। मेरे पास फूटी कौड़ी तक न थी। मैं क्या देता। एक दिन हल चला कर आया था। दोपहर में एक मुट्ठी घुघनी ही खाकर पानी पी सो रहा था कि जमींदार घोड़ी पर सवार हो आ पहुँचा। उसने चार वर्षों का लगान माँगा। मैं बहुत रोया गाया, माफी माँगी, किन्तु उसने कुछ नहीं सुना। उसने मुझे दो प्यादों से बँधवा कर अपने डेरे पर बुला मँगाया और उस कड़ी धूम में झुका कर मेरी पीठ पर चार ईंटें रखवा दीं। जब मैं चिल्लाता-बिलपता था, तब बेंत से पैरों और चूतड़ पर मरवाता था। अन्त में मैं बेहोश होकर गिर पड़ा।"

"हाय ! वह बड़ा कसाई था !"

"हाँ, माटे ! मुझे आज भी स्मरण करते भय हो आता है। उसने एक दिन भूखा ही अपने पास बैठाने के बाद छोड़ा था, किन्तु जानती हो उस आततायी ने और क्या किया ? मेरे खेत को—उस बचे हुए एक बीघा खेत को भी, अपने आदमियों से जोतवा कर धान छिटवा दिया। इतने से भी उसका मन नहीं भरा। उसने मेरी टूटी-फूटी झोंपड़ी भी जलवा दी और कहा कि तुम मेरी जमींदारी से निकल जाओ। मैं तुम्हें

देखना भी नहीं चाहता। लड़की के विवाह के लिए तो चार सौ रुपये खर्च किये और लगान के नाम पर एक कौड़ी भी नहीं देता।"

"आगे क्या हुआ स्वामी ?"

"ग्रामवासियों को भी मेरे ऊपर दया नहीं आई। किसी ने मेरी सहायता नहीं की। जमींदार के आतंक से सब भयभीत थे। उसी दिन टहलू तेली आया और कहा कि तुम्हारे पिता ने मुझसे पन्द्रह रुपये कर्ज लिये थे। वह बढ़ कर आज तक दो सौ हो गए हैं। उसे देकर ही कहीं जाना, नहीं तो परलोक में भरना होगा। मैंने इससे पूर्व इस रुपये की बात सुनी तक न थी। क्या करता ? उसी रात ग्राम छोड़कर भाग चला। बिना किराया दिए ही कलकत्ता पहुँचा। वहाँ मजदूरी करके छः रुपये कमाया और जहाज से बर्मा चला आया। यहाँ आने पर एक रुपये की लागत से मूंगफली खरीद कर बेंचने लगा और तब तुमसे भेंट हुई।"

"आपकी कहानी बड़ी ही कारुणिक है, किन्तु अब कोई चिन्ता नहीं। अब तो आपके पास एक हजार से भी अधिक रुपये हो गए हैं। मेरे दूकान पर बैठने से लोग भी बहुत आते हैं। हम लोग अब एक छोटा-सा होटल खोल दें तो अच्छा हो।"—माटे ल्हांई ने प्रेम से रामरत्ती की आँखों में देखते हुए कहा।

(३)

सन् १९४२ का विप्लव मचा हुआ था। बर्मा पर जापानियों का आधिपत्य हो गया था। उनके नृशंस कार्यों से

जनता आतंकित थी। बहुत से बर्मी भिक्षु गोली से उड़ा दिए गए थे। देश के स्वातंत्र्य के लिए प्रयत्नशील लोगों को कड़ी से कड़ी सजा मिल रही थी। बर्मा से भारत के लिए भगदड़ मच गई थी। मार्ग अवरुद्ध होने से भी लोग जंगली मार्गों से भाग कर भारत आ रहे थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा अनुमोदित बर्मी सरकार का प्रधान कार्यालय रंगून से शिमला आ चुका था। स्थान-स्थान पर शरणार्थी कैम्प खोले गए थे। भारत के सेठ-साहूकार तक बर्मी शरणार्थियों की सहायता करने में संलग्न थे। जंगली मार्ग से आने वालों के लिए वायुयान से खाद्य-सामग्रियाँ ब्रिटिश सरकार की ओर से गिराई जा रही थीं, जिनके सहारे बर्मी शरणार्थी खाते-पीते भारत पहुँच रहे थे।

रामरत्ती ने भी माटेल्हांई को समझाया और दोनों ने बर्मा छोड़ कर भारत के लिए प्रस्थान कर दिया। उन्होंने माण्डले से पैदल चलकर जंगली मार्ग से आसाम तथा बर्मा के सीमान्त प्रदेश से होकर भारत आना चाहा। मार्ग विकट था। सिंह, अजगर, रीछ आदि से भरा हुआ पहाड़ी जंगल कम भयानक न था। शरणार्थी-दल के साथ वे भी हो लिए और आगे बढ़ते चले। सीमा पर जाते ही जापानियों ने बमवर्षा की किन्तु कोई मरा नहीं। रामरत्ती किसान का लड़का था। मेहनती एवं सहनशील भी था, किन्तु माटेल्हांई बर्मी सुकुमार स्त्री थी। बर्मी लोग खाने-पीने, नाचने-गाने और धन उड़ाने में ही तो तेज होते हैं, वे परिश्रमी कम ही होते हैं, फिर स्त्रियाँ तो और भी कोमलांगी ठहरीं। माटेल्हांई ने हिम्मत करके दो सप्ताह तक

पैदल यात्रा की, किन्तु मार्ग में अव्यवस्थित जीवन, अनाहार एवं भय के कारण वह मुरझा-सी गई। उससे चला नहीं जाता था। वह एक जंगली स्थान में बैठ गई और रामरत्ती से आग्रह किया कि आज यहीं विश्राम करें, किन्तु वहाँ पानी नहीं था। कोई साधन भी न था कि पानी प्राप्त किया जा सके। रामरत्ती ने उसे समझाया। वह निर्बल हो चुकी थी। उसने उसकी विवशता देख उसे अपने कंधे पर उठा लिया, किन्तु दूर तक इस प्रकार ले जाना सम्भव न था। उनके इस प्रकार धीरे-धीरे चलने के कारण अन्य शरणार्थी काफी आगे बढ़ गए थे। वे दोनों ही बीच जंगल में पिछड़ गए। माटेल्हांई बहुत प्यासी थी। उसका गला प्यास से सूख गया था, किन्तु पानी कहाँ? रामरत्ती उसे एक स्थान पर बैठा कर पानी की खोज में उत्तर ओर गया। थोड़ी दूर पर उसे एक पानी से भरा गड्ढा मिल गया। उसने लोटे में पानी लिया और तेजी से अपनी प्यारी पत्नी की ओर बढ़ा, किन्तु हाय! यह क्या हुआ? बेचारी माटेल्हांई पानी के लिए तड़पती हुई चेतना-शून्य हो भूमि पर सदा के लिए सो गई थी!

रामरत्ती अपनी आँखों के सामने अपनी प्रियतमा की इस गति को देख कर रो पड़ा। वह देर तक माटेल्हांई के मृत कलेवर से लिपट कर विलाप करता रहा। उसे होश नहीं रहा कि वह कहाँ है? दिन ढल चुका था। चीतों के निकलने का समय हो चला था, तब तक शरणार्थियों का एक और दल उसी मार्ग से आ निकला। उन्होंने रामरत्ती को समझाया कि वह

इस भयानक जंगल में रह कर स्वयं भी न मरे। रामरत्ती ने दो-चार जंगली फूलों को तोड़ कर माटेल्हांई के शरीर पर चढ़ाया। उसे वस्त्र से भली प्रकार ढँक कर प्रणाम किया और भारत की ओर बढ़ चला।

(४)

"बेटी रमदेइया! मैं तुम्हारे यहाँ इसलिए आया था कि अब मेरा तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा है ही कौन? डुमरी में तो मेरा कुछ भी नहीं रहा। मैंने शपथ ली है कि जब तक जीवित रहूँगा, उस पापी जमींदार के इलाके में नहीं जाऊँगा। किन्तु बेटी! मैं देखता हूँ कि तुम्हारे घर वाले मुझसे छूत मानते हैं। थाली लोटा भी नहीं छुआते।" रामरत्ती ने धीरे से दीन-स्वर में कहा।

"हाँ दादा! यह सत्य है। आप बर्मा गए थे। आपने वहाँ बर्मी स्त्री से विवाह कर लिया था, इसलिए आप कुजाति हो गए हैं न?"

"बेटी! यह कैसी विचित्र बात है! क्या बर्मी लोग मनुष्य नहीं हैं? क्या बर्मी स्त्री से विवाह करने से मैं पतित हो गया? मैं तो समझता हूँ कि वे वास्तव में धार्मिक हैं, मानवता के पुजारी हैं। उनमें जाति-पाँति, छुआछूत आदि किसी भी प्रकार की विषमता नहीं है। वे मनुष्य मात्र को एक कुटुम्ब का समझते हैं। वे बड़े दानी भी होते हैं। बेटी! यदि तुम बर्मा गई होती तो तुमने देखा होता कि श्वेदगौं, शूले, आनन्द आदि पैगोडा के पास किस भक्ति-भाव से स्त्री-पुरुष एकत्र होते और 'फया' की

पूजा करते हैं। बेटी ! अब तो अन्तर्जातीय तथा अन्तर्देशीय वैवाहिक सम्बन्धों से ही विश्वमैत्री स्थापित होगी। इसी से पारस्परिक मनोमालिन्य मिटेगा।''

''फया क्या है दादा ?''

''बेटी ! बर्मी लोग भगवान् बुद्ध को 'फया' कहते हैं। कुशीनगर के निकटवर्ती हम सब लोग उन्हें ही माथाकुँवर कहते हैं, किन्तु यह नहीं जानते हैं कि ये कौन हैं ? हम लोग इन्हें बर्मी लोगों का देवता समझते हैं। जिस महापुरुष ने हमारे देश का मस्तक ऊपर उठाया, उसकी यहाँ यह मान्यता ! आश्चर्य है बेटी ! मैं पहले अन्धकार में था, किन्तु माटेल्हांई ने मेरे हृदय में प्रकाश भर दिया है। यह देखो, मैं जो अपने गले में सोने का लाकेट पहने हूँ, इसमें उसी भगवान् बुद्ध की मूर्ति का चित्र है। इसे मैंने माटेल्हांई के गले से निकाल कर पहन लिया था और उसके हाथों को पकड़ कर प्रतिज्ञा की थी कि मैं सदा भगवान् बुद्ध की पूजा कर तुम्हारी स्मृति जागृत रखूँगा।''

''दादा ! मुझे भी भगवान् का दर्शन कराइये। मैं भी उन्हें कड़ाही चढ़ाऊँगी और मनौती मानूँगी।''

''क्यों बेटी ! तुमने अभी तक माथाकुँवर का दर्शन नहीं किया है ?''

''किया है दादा ! किन्तु अब आपके साथ दर्शन करना चाहती हूँ। सदा आपके ही साथ रहना भी चाहती हूँ। मेरा मन इस घर में नहीं लगता। जिस दिन से आप आए हैं, ये लोग आपके धन के ही भूखे हैं।''

"फिर मुझसे घृणा क्यों करते हैं ? मेरे धन में छूत नहीं लगी है ? यह धन भी तो बर्मा का ही है। मेरी उसी बर्मी स्त्री के श्रम का फल है।"

"दादा ! लोगों में अज्ञान भरा हुआ है। ये धन के लोभी हैं। आपसे छूत मानेंगे, आपके धन से नहीं। जाने दीजिए दादा ! इन बातों को छोड़िए। मैं तो इनकी बातों से परेशान हो गयी हूँ जिस पिता ने मुझे पालपोस कर सयानी किया, अपना पेट काटकर मेरा विवाह किया, उस पिता का अनादर मुझसे नहीं देखा जाता। मैं एक घड़ी भी इस घर में नहीं रहूँगी।" रमदेइया यह कहते हुए सिसक पड़ी तथा आँचल से अपने छल-छलाते हुए आँसुओं को पोंछ लिया।

दूसरे दिन प्रातः ही पिता-पुत्री बिना किसी से कहे ही कुशीनगर चले गए। उन्होंने परिनिर्वाण मन्दिर में पुष्प-धूप-दीप से तथागत की पूजा की। रमदेइया ने कड़ाही भी चढ़ाई। लोगों को प्रसाद बाँटा। उसी बीच कुछ बर्मी शरणार्थी तीर्थ-यात्रा हेतु कुशीनगर आए। उनके साथ एक भिक्षु और तीन अनागारिकायें भी थीं। रामरत्ती ने भिक्षु से आग्रह कर त्रि-शरण-पंचशील ग्रहण किया। "बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि' के उच्च स्वर से मन्दिर गुंजित हो उठा। पिता के ही साथ पुत्री ने भी इन वाक्यों को दुहराया।

"दादा ! मैं भी इन लोगों की ही भाँति तपस्विनी हो जाना चाहती हूँ।" रमदेइया ने अनागारिकाओं की ओर संकेत करते हुए कहा।

"बेटी ! ये तपस्विनी ही हैं, किन्तु इन्हें अनागारिका कहते हैं । ये एक समय भोजन करती हैं और संयमित आदर्श जीवन व्यतीत करती हैं । क्या तुम इनके नियमों का पालन कर सकोगी ?"

"हाँ, दादा ! मैं जीवन-पर्यन्त अनागारिका-धर्म का पालन करूँगी । आप मेरा उद्धार कराइये ।"

पिता-पुत्री ने उन यात्रियों से अपनी मनोकामना प्रकट की । उनके लिए यह महान् पुण्यकर्म था, जो तथागत के परिनिर्वाण स्थल पर एक गृहस्थ को भिक्षु और एक तरुणी को अनागारिका बनाते । थोड़ी देर में प्रव्रज्या की सारी व्यवस्था हो गई । रामरत्ती प्रव्रजित होकर श्रामणेर बन गया और रमदेइया अनागारिका । वे दोनों उन्हीं के साथ सायंकाल लुम्बिनी के लिए प्रस्थान कर गये और फिर कभी नहीं लौटे ।

आज कोई नहीं जानता कि वे पिता-पुत्री कहाँ हैं ? जीवित हैं या मर गए ? फिर भी मंगलपुर ग्राम के लोग आज भी उनके त्याग की विचित्र कथायें अपने बच्चों को सुनाया करते हैं ।

नया बिहान

(आधुनिक काल)

रधिया का विवाह हुए पन्द्रह वर्ष हुए थे। उसके दो लड़के और दो लड़कियाँ थीं। जब वह पड़रौना से ब्याह कर अपनी ससुराल कसया आई थी तब से उसे भर भेट भोजन क्वार, कार्त्तिक, फाल्गुन और चैत्र में ही धान और गेहूँ की फसल होने पर मिल पाता था। शेष महीनों में रधिया प्रातः उठती, घर-द्वार साफ करती, बैलों के नाँदों में सानी-पानी डालती और मुख में पैसा भर गुड़ डालकर एक लोटा पानी पी लेती तथा घड़ी भर दिन आते अपने खेतों में जुट जाती। उसके पास खेत भी पाँच बीघा ही था। उसके साथ घर पर उसके बच्चे थे, दो बैल थे, स्कूल में पढ़ने वाला देवर था और था वृद्ध श्वसुर। पति बम्बई में नौकरी करता था। वह वर्ष में दो बार छुट्टी लेकर घर आ जाया करता था। रधिया चाहती थी कि उसका पति सुखारी कसया में ही रहकर काम-धन्धा करें, किन्तु वह विवश था। साहूकारों के ऋण-भार से उसका पिता इतना दबा था कि वह उससे मुक्ति का दूसरा साधन ही नहीं देखता था। उसे साठ रुपया मासिक वेतन मिलता था और कुछ ऊपर झापर की भी आमदनी थी। प्रति मास खा-पीकर वह पचास रुपये बचा लेता था। उसमें से बीस रुपये अपने पिता के नाम मनीआर्डर कर देता था और तीस रुपये साहूकारों के नाम। उसे साहूकारों के पास रुपये भेजते हुए दस वर्ष हो गए थे किन्तु चक्रवृद्धि व्याज के हिसाब

से ऋण का भार बहुत धीरे-धीरे घटता था। इधर उसके पिता बीस रुपए में से अपने सुर्ती-तम्बाकू के लिए कुछ बचा लेते, कुछ बच्चों के लिए मसलपट्टी-बतासा खरीदने को रख लेते। पाहुनों के आने पर उनके आवभगत के लिए एकाध सेर रामपुर की देशी चीनी खरीद लेते और शेष रुपये रधिया को दे देते। रधिया उन्हें यत्नपूर्वक बचा कर रखती और अपने देवर रमेश के लिए कमीज-कुर्त्ता बनवाती, फीस के पैसे देती और किताब-कापी खरीदने के लिए फरमाइशों को पूरा करती। नन्हें बच्चों और रमेश के लिए रात में ही भोजन तैयार कर रखती। रमेश रोज बासी भात-दाल खाकर स्कूल जाता। रधिया अपने लिए तथा अपने श्वसुर के लिए मड़ुआ, कोदो, मकई, सावां, टांगुन के रोटी-भात बना लेती और दोनों ही थोड़ा-थोड़ा खाकर पानी पी लेते। वह दिन भर खेतों में काम करती, कुदाल चलाती, सोहनी करती, ढेकुल चला कर पानी देती और धान, गेहूँ, सावां, टांगुन, मड़ुआ, कोदो के अलावा कुछ साग-सब्जी भी पैदा कर लेती। टहलू के पास बैल नहीं थे। उसके पास भी तीन बीघा खेत था। वह रधिया के बैलों से अपने खेतों को जोतता और भांजा के अनुसार रधिया के खेतों को भी जोत-बो देता। रधिया को बीज आदि का प्रबन्ध करना पड़ता।

दिन भर खेतों में काम करने के कारण रधिया का शरीर थककर चूर-चूर हो जाता। उसके नन्हें-नन्हें बच्चे भी रोया करते। श्वसुर उन्हें सम्हालना चाहते हुए भी सम्हाल नहीं पाता। बच्चों को माँ का प्यार बहुत कम ही मिल पाता। अब उसका

बड़ा लड़का श्रीकान्त भी छः वर्ष का हो गया था। उसे भी स्कूल जाना चाहिए था, किन्तु स्कूल भेजने से पूर्व उसके लिए कमीज या कुर्त्ता बनवाना था। उसे बनवाने के लिए रधिया हर महीने सोचती कि अगले महीने रुपया आने पर बनवा दूँगी और स्लेट, पटरी, किताब खरीद दूँगी, एक झोला भी ले दूँगी, किन्तु जब रुपया मिलता तब बीज खरीदना होता, बैलों के लिए रस्सी लेनी होती, फूटे हुए नाँदों की जगह नये नाँद लेने होते, कूएँ से पानी लाने के लिए गगरी एवं घड़े खरीदने होते। बच्चों और रमेश के भोजनादि का प्रबन्ध करना होता। कभी हिसाब बच ही नहीं पाता। गनीमत यही थी कि उसके लिए, श्वसुर के लिए और बच्चों के लिए सुखारी बम्बई से ही कपड़ा-लत्ता लाया करता था। खेत के लगान का भी प्रबन्ध रधिया को ही करना पड़ता। जमींदारों की घुड़की सुननी पड़ती। एक जमींदार के पुत्र की आँख बहुत दिनों से उसपर लगी थी। वह उसके साथ जबरदस्ती भी करना चाहता था, किन्तु जमींदारी उन्मूलन के बाद उससे छुटकारा मिला। रधिया गांधी बाबा को सौ-सौ आशीष देती। अब उसे जमींदारों के घर बेगारी करने नहीं जाना पड़ता। साग-सब्जी की डलिया नहीं भेजनी पड़ती। जमींदारी के जाने पर भी पटवारी को खुश रखना पड़ता। उसे भी मुँहमाँगी साग-सब्जी देनी पड़ती, बैलों को भी उसके खेतों को जोतने के लिए देना होता। कलम की पूजा के लिए भी प्रतिवर्ष कुछ दक्षिणा देनी होती, किन्तु जब से लेखपालों का जन्म हुआ है, इन्होंने तो उसे और भी भयभीत कर दिया है। ग्राम-सभा के सरपंच गनेश मुखिया ने बतलाया कि उसके तीन खेतों पर अब

टहलू के नाम दर्ज हो गए हैं। लेखपाल ने टहलू से कुछ रुपये लेकर उन खेतों को उसके नाम कर दिया है। अब रधिया अपने खेतों से भी बेदखल हो जायेगी और टहलू उन्हें जोत लेगा। रधिया ने रमेश को एक दिन लेखपाल के पास इन्तखाब के लिए भेजा था तो वह उससे दस रुपये माँगता था। रोने-धोने पर भी उसे दया नहीं आई और कहने लगा कि तुम्हारे पास तो बम्बई से रुपये आते हैं। तुम्हें रुपयों की क्या कमी ?, जा अपनी भौजाई से माँग ला। बेचारा दुखी होकर लौट आया था।

रधिया ने लोगों की देखादेखी दो खेतों में गन्ना बो दिया था। गल्ले की फसल गाँव में सबसे अच्छी थी। केन यूनियन के कारण उसे समय पर पर्चियाँ नहीं मिल पाईं और कुछ गन्ना खेत में ही सूख गया। जितनी पर्चियाँ मिल पाई थीं, उतने गाड़ी गन्ना मँहगू की बैलगाड़ी से काँटे पर भेजवा दिया था। गाड़ी में रधिया के ही बैल जुते थे, फिर भी मँहगू को छ पैसे प्रति मन के हिसाब से भाड़ा देना तय हुआ था। काँटे वालों ने भी ऐसा धोखा दिया कि दस महीने तक गन्ने का दाम नहीं मिल पाया। जब भी गन्ने के दाम के लिए रधिया जाती, मिल से रुपये नहीं आने का ही रोना रोया जाता। बेचारी की बहुत-सी आशाएँ इन रुपयों के न मिल पाने के कारण मर चुकी थीं। उसने सोचा था कि जब रुपये मिलेंगे तो मुन्ना के लिए बेरवा बनवायेगी और मुन्नी के लिए चूड़िया लेगी। कमला के लिए चाँदी की पहुँची भी बनवाना चाहती थी। कमला अब थोड़ी बड़ी भी तो हो गई है। उसकी उम्र की लड़कियाँ अब साड़ी पहनने लगी हैं और उनके कानों में बालियाँ भी हो गई हैं।

कुछ वर्षों से कसया में सामुदायिक विकास क्षेत्र का कार्यालय खुल गया था। ग्राम-सेवक एवं ग्राम-सेविकाएँ गाँवों में घूम-घूमकर लोगों को बहुमुखी विकास के उपाय बतलाते थे। नलकूप भी लग गया था। अब खेतों को पातालगंगा का नीला जल मिलने लगा था, जिससे उपज दुगुनी-तिगुनी होने लगी थी। बीज के लिए अब बाजारों की धूल नहीं छाननी पड़ती और न तो सवाई ब्याज पर ही बीज लेना होता। बीज-भण्डार से बीज और खाद मिल जाती, जिन्हें फसल होने पर चुकाना होता। गाँव के पनाले पक्के बन गए। पूरे गाँव में ईटों का सुन्दर खडंजा बिछ गया। गाँव में एक दाई भी घूम जाया करती और ग्रामसभा की मनमानी जाती रही। गाँव में एक दिन सभा हुई। गाँव भर की महिलायें पंचायत-भवन में एकत्र हुईं। ग्राम-सेविका मीरा बहन ने महिलाओं को परिवार-नियोजन के महत्व को समझाया। घर-गृहस्थी के विकास की बातें बतलायीं। जब सब महिलायें जाने लगीं तब रधिया ने मीरा बहन को बतलाया कि लेखपाल ने उसके खेतों को कैसे टहलू के नाम कर दिया है। दूसरे ही दिन विकास-अधिकारी के साथ कानूनगो गाँव में आए। लोगों से रधिया की शिकायत की पूछताछ की और लेखपाल को मुअत्तल कर दिया। रधिया के खेत बच गए। अब वह गांधी बाबा की अनन्य पूजिका हो गई। सरकार के इस उपकार से रधिया का मन गद्गद् हो गया। विह्वल होकर उसकी आँखों से दो बूँद आनन्द के आँसू भी टपक पड़े। उसने आँखों को आँचल से पोंछा और तय किया कि अब वह पति को तार देकर बम्बई से बुलायेगी।

रमेश भी इस वर्ष हाईस्कूल पास हो जायेगा। सब एक साथ रहकर काम करेंगे। बच्चों को स्कूल भेजेंगे और रमेश को ग्राम-सेवक बनवायेंगे। इस प्रकार घर में लक्ष्मी का निवास होगा और आनन्दपूर्वक जीवन कट जायेगा।

जून का महीना आया। रमेश ने दौड़ते हुए आकर भाभी के पैर छूए। पिता को प्रणाम किया। बच्चों को गले लगाया। रधिया ने प्रसन्नता का कारण पूछा, तो बतलाया कि वह हाईस्कूल परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हो गया है। रधिया ने काली माई को कड़ाही और डीह बाबा को जेवनार मनौती माना था कि उसके देवर के पास होते ही वह उन्हें मनौती चढ़ायेगी। काली माई की जै, डीह बाबा की जै, बोलती हुई रधिया मानो उलछ पड़ी। रमेश ने नौकरी-दफ्तर में अपना नाम लिखा दिया। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण सहायक विकास अधिकारी के पद के लिए उसका चुनाव हो गया। उसे बक्सी तालाब ट्रेनिंग के लिए जाना था। वहाँ जाने के लिए किराये और कुछ नकद रुपयों की आवश्यकता थी। रधिया ने अपने विवाह के समय मिली सोने की नथुनी और चाँदी के कंगन को बेचकर सौ रुपये जुटा दिए। रमेश ट्रेनिंग के लिए चला गया।

उधर उसका पति सुखारी भी बम्बई से आया और वह अब रधिया के आग्रह से घर ही रहने लगा। वे दोनों दिन में खेतों में काम करते, सुबह-शाम सूत कातते, चटाइयाँ बुनते और करघे पर कपड़े भी तैयार कर लेते। रधिया का श्वसुर भी

घर की दालान में बैठा सूत काता करता और सूत की गुंडी को बेच कर वह भी काफी पैसे पा जाता। घरभर के लोगों के लिए कपड़ा घर पर ही तैयार होने लगा। इसी आय से धीरे-धीरे करके साहूकारों से भी गला छूट गया। रमेश को सरकार की ओर से ही खाने-पीने का प्रबन्ध था। अब उसके लिए कुछ नहीं देना होता। सुखारी ने एक भैंस भी खरीद ली और उसके दूध से भी कुछ आमदनी होने लगी। खेतों की पैदावार पहले से बहुत अधिक बढ़ गई थी। नलकूप के पानी के अलावा हरी खाद भी खेतों को पहले से अधिक मिलने लगी थी। सुखारी के खेत की लौकी विकास-प्रदर्शनी में रखी गई थी, जिसके लिए उसे पचास रुपये इनाम में मिले थे। सुखारी ने एक पुरानी सिलाई की मशीन भी ले ली। रधिया ने धीरे-धीरे सिलाई सीख ली और गाँव भर के कपड़े भी वही सीने लगी।

इसी बीच ग्राम-पंचायत की सरपंची का चुनाव आया। सुखारी ने भी सरपंची का पर्चा भरा। उधर भूतपूर्व जमींदार के लड़के बहादुर सिंह ने भी सरपंच बनने का प्रयत्न किया। ग्रामवासियों ने अपना वोट सुखारी को ही दिया। बहादुर सिंह बुरी तरह पराजित हुआ। उसे केवल पच्चीस ही वोट मिले थे। अब सुखारी कसया का सरपंच भी हो गया। उधर रमेश की ट्रेनिंग समाप्त हुई और वह भी सहायक विकास अधिकारी होकर देवरिया में नियुक्त हो गया। बच्चे स्कूल जाने लगे। इस उजड़े से घर में आनन्द का साम्राज्य छा गया। सुबह-शाम इस घर के द्वार पर लोगों की भीड़ जुटने लगी। शाम को जो

बैठक बैठती, वह कभी-कभी आधी रात तक चलती। आल्हा, सोहर, विरहा आदि गाए जाते कभी-कभी धर्म-चर्चा भी होती।

रमेश को पहले मास का वेतन मिला। उसने रधिया के लिए साड़ी खरीदी, बच्चों के लिए फ्राक, बंडी और कुर्ते लिए, पिता और पितामह के लिए मरदानी ली। साथ ही कुछ फल और मिठाइयाँ भी। वह शाम को घर पहुँचा। सबके लिए उपहार की वस्तुएँ देकर रधिया के हाथ में दस-दस के दस नोट रखते हुए बोला—"लो भाभी! यह तेरी ही कमाई है। यदि तूने अपना पेट काटकर मुझे नहीं पढ़ाया होता तो आज यह दिन नहीं आता। भाभी मुझे आशीर्वाद दो।"

"नहीं बाबू! मैंने क्या किया है? यह सब गाँधी बाबा की देन है। उन्हीं की कृपा से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और हम लोग कुछ कर सकने लायक हुए। यदि देश स्वतन्त्र नहीं हुआ होता तो हम कभी पिस गए होते। बाबू! अपने भइया के पैर छुओ, उन्होंने ही तो विदेश में जाकर रुपये कमाए और हम लोगों का पालन-पोषण किया। हाँ बाबू! अब मेरी एक इच्छा और बाकी है। तुम्हें इसी वर्ष उसे पूरी करनी होगी। जानते हो वह क्या है? मैं तुम्हें शीघ्र ही दुलहिन के साथ देखना चाहती हूँ।"

परिशिष्ट

शब्द-अनुक्रमणी

क्ष

ख

ग

ध

न

प

भ

ल

व

ह